पुरातत्व विज्ञान

(FIELD ARCHAEOLOGY)

(एक प्रामाणिक पुस्तक)

लेखक

राम प्रकाश ओझा, एम० ए०

प्राच्य इतिहास विशेषज्ञ, गोल्ड मेडलिस्ट

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मूल्य : बारह रुपये पचास पैसे (रु० 12.50)

प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड, लखनऊ

● प्रकाशक : प्रकाशन केन्द्र, पोरट महानगर, सीतापुर रोड, लखनऊ

● 1978

● मूल्य : बारह रुपए पचास पैसे (रु० 12·50) मात्र

आमुख

पुरातत्व विज्ञान की महत्ता सर्व विदित है। कुछ समय पूर्व तक इतिहासकार केवल साहित्यिक स्रोतों का आश्रय लेकर ही किसी स्थान से सम्बन्धित इतिहास लिखा करते थे पर अब पुरातत्व विज्ञान की सहायता से अधिकांश स्थानों का सांस्कृतिक एवं राजनैतिक इतिहास बड़ी सुगमता से लिखा जा सकता है। पुरातत्व विभाग ने हजारों वर्ष के पुराने खंडहरों में दबी हुई सभ्यता को खोदकर प्रकाश में लाने का जो सफल, सारगर्भित एवं भगीरथ प्रयास किया है वह केवल श्लाघनीय ही नहीं वरन् विश्व के इतिहास में अविस्मरणीय भी रहेगा। इस विभाग ने हम लोगों के समक्ष इतिहास का एक जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है और यही इसकी अक्षय निधि देन है। वे सभ्यताएँ जो अभी तक पृथ्वी के विशाल गर्भ में दबी हुई विलाप कर रही थीं वे अब प्रकाश में आकर हम लोगों के जागरण का केन्द्र बन गई हैं। यही पुरातत्व का अभिप्राय भी होता है कि किसी स्थान के अन्दर दबी हुई सभ्यता करके प्रकाश में ला देना। उत्खाता का कार्य होता है कि किसी भी स्थान का विधिवत परीक्षण, और उत्खनन करके वहाँ पर उपलब्ध हुए अवशेषों के आधार पर सांस्कृतिक और राजनैतिक इतिहास का निर्माण कर देना। विज्ञान का साहचर्य भी इस विषय में एक वरदान के रूप में सिद्ध हुआ है। विभिन्न पुरातात्विकों ,जैसे पिटरिवर्स, पिट्री, सर मार्टीमर ह्वीलर, एल० वूली और सर जान-मार्शल आदि, के सहयोग से यह विषय दिन प्रतिदिन उन्नति ही करता गया। संक्षेप में पुरातत्व विज्ञान के प्रादुर्भाव का श्रेय उपर्युक्त विद्वानों को ही दिया जा सकता है। उपर्युक्त विद्वानों ने विभिन्न स्थानों पर उत्खनन करवाया और वहाँ से उपलब्ध हुए अवशेषों के आधार पर एक वृहत् संस्कृति का निर्माण किया। यदि इस पुरातत्व विज्ञान का प्रादुर्भाव न होता तो आज भी हमारे देश का इतिहास अंधकारमय रहता। धन्य है ऐसे विभाग को जिसने अप्रामाणिक इतिहास में प्रामाणिकता रूपी जान का संचार कर दिया।

एक अमेरिकन लेखक ने कहा है।

"Archaeology per se is no more than a method and a set of specialized techneques for the gathering of cultural information. The Archaeologist, as archaeologist, is really nothing but a technician." (W. W. Taylor, as cited, p. 43)

पर अब पुरातत्व विज्ञान का अध्ययन और भी आगे बढ़ गया है तथा दिन प्रतिदिन उन्नति ही करता जा रहा है। आशा है इसका भविष्य उज्ज्वल होगा।

लेखक डा० मार्टीमर ह्वीलर, पिगट, संकालिया, सर जान मार्शल, ग्रहमे क्लार्क, केदारनाथ शास्त्री और डा० बैजनाथ पुरी आदि विद्वानों का पूर्णतया आभारी है जिनकी कृतियों से उसे एक विशिष्ट मार्ग-दर्शन मिला है। साथ ही लेखक अपने गुरुवर डा० शिवनन्दन जी मिश्र का आभारी है जिनके अमूल्य निर्देशन ने इस कार्य को सरल एवं दीप्तिपूर्ण बना दिया। वह उनके-प्रति अपनी विनीत श्रद्धा प्रकट करता है। लेखक ने चित्र डा० ह्वीलर की पुस्तकों से लिया है, वह उनके प्रति आभारी है। प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं। आशा है इसके लिए विज्ञ पाठकगण क्षमा प्रदान करेंगे।

—लेखक
रामप्रकाश ओझा

विषय-सूची

Replacement CPY 30.10.87

समर्पण

श्रद्धेय गुरुवर डा० शिवनन्दन जी मिश्र

के

कर-कमलों में

सादर समर्पित

—राम प्रकाश ओझा
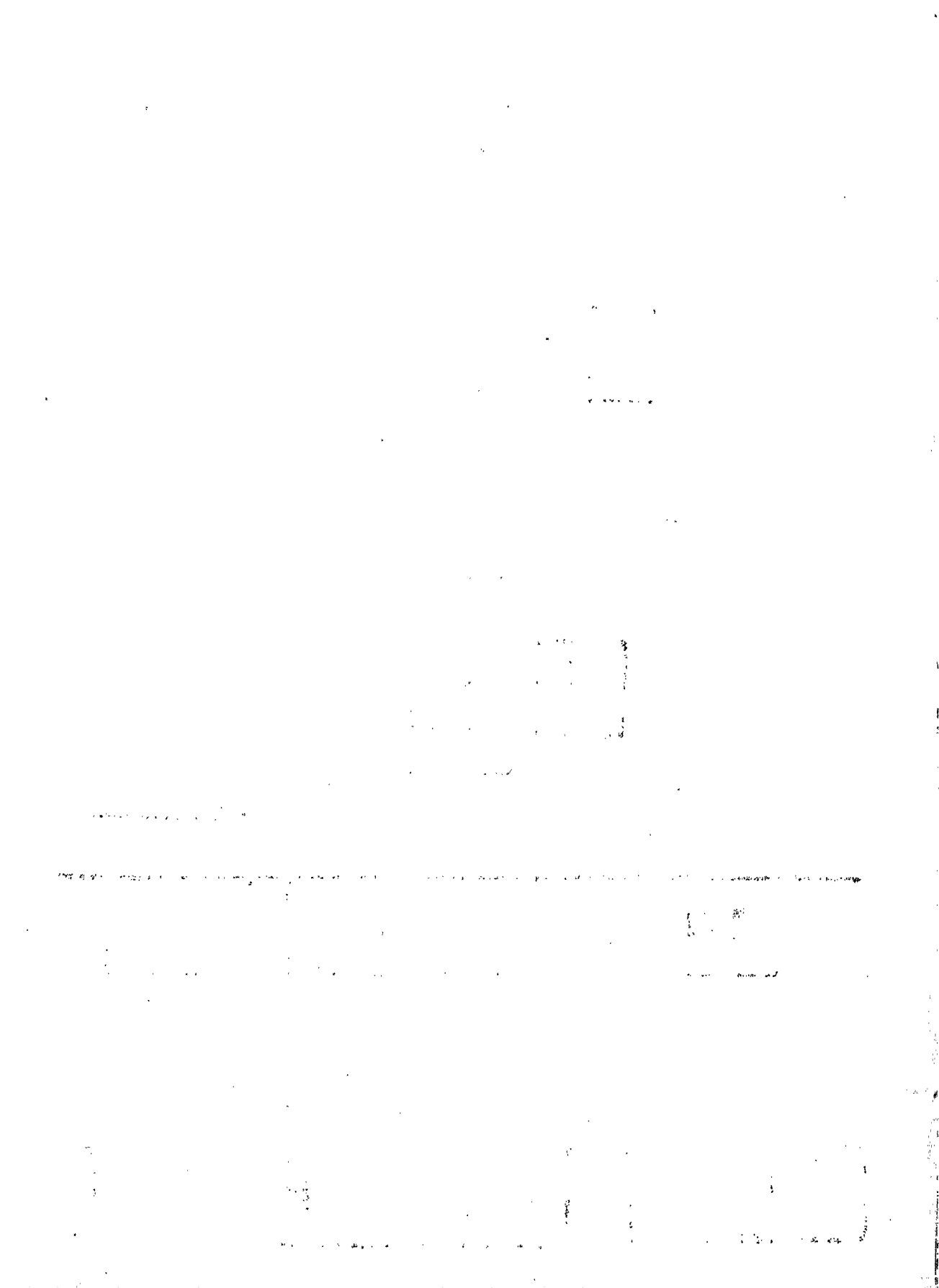
अध्याय | 1

हस्तिनापुर

हस्तिनापुर के प्राचीन खण्डहर उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत मेरठ जिले की मवाना तहसील में गंगा के सूखे पाट (बुडगंगा) पर स्थित हैं। कुछ पुरातत्वविज्ञों की धारणा है कि ये टीले महाभारत कालीन हस्तिनापुर के अवशेष हैं। महाभारत में हस्तिनापुर की वैभवसम्पन्नता, सुन्दरता एवं विशालता के सुस्पष्ट साक्ष्य मिलते हैं। पुराणों में दिये हुये वर्णन के अनुसार गंगा में प्रचण्ड बाढ़ राजा निचक्षु के समय में आई थी। जब गंगा के द्वारा हस्तिनापुर बहा ले जाया गया तो राजा निचक्षु कौशाम्बी में आकर बस गये:

"गङ्गयाऽपहृते अपि अस्मिन्नगरे नागसाह्वये।
त्यक्त्वा निचक्षु नगरं कौशाम्व्यां सन्निवत्स्यन्ति।"

निचक्षु कौशाम्बी नरेश उदयन से कई पीढ़ी पहले हो चुका था। बी० बी० लाल के उदयन से निचक्षु तक अठारह राजाओं में से हर एक राजा के शासन काल को (पार्जीटर के अनुसार) 183 वर्ष का काल देकर यह निर्णय दिया है कि यह बाढ़ ई० पू० 800 के पीछे की घटना नहीं हो सकती थी ("हस्तिनापुर एक्सकेवेशन्स एण्ड दि आर्यन प्राब्लेम" 27 फरवरी, 1955 के हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित)।

हस्तिनापुर के टीले के उत्खनन में (सन् 1950-52) श्री बी० बी० लाल ने पाँच काल की आबादियों के अवशेष पाये थे। इनका वर्णन क्रमश: निम्न है। प्राथमिक काल की सभ्यता $1\frac{1}{2}$ फिट मोटी परत के अन्दर सन्निहित थी। यहाँ पर केवल ओक्र (Ochre) वेर के कुछ टूटे-फूटे भद्दी आकृति वाले उपकरण उपलब्ध हुए हैं। द्वितीय काल की आबादी के 7 फुट ऊँचे मलवे में बी० बी० लाल को 'चित्रित सलेटी कुम्भकला' के खण्ड, काँच के कंगण; मिट्टी के खिलौने, ताँबे के तीरों के फल, नहेरने और दाँतियाँ, और हड्डी की सलाखें आदि मिले थे। साथ ही यहाँ पर कच्ची ईंटों वाली दिवालों के तथा भग्नावशेषों में कीच से लिपे हुए कच्चे कोठे उपलब्ध हुए हैं। अन्य प्राप्त हुए उपकरणों में, जले हुए चावल के टुकड़े तथा पकायी हुई मिट्टियों से निर्मित कुबड़े बैल, भैंस, घोड़े, भेड़ और सुअरों आदि की आकृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

यह युग विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि यह (स्तर) प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक युगों को परस्पर मिलाने में सेतु का काम देता है (देखिए-सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा, केदारनाथ शास्त्री, पृ० 230-31)। भारतीय पुरातत्व विभाग के विशेषज्ञों ने 'चित्रित सलेटी कुम्भकला को वैदिक आर्यों की कृति बतलाया है। उनका कथन है कि इस शैली के मृद्भाण्ड गंगा सतलज की उन्नत घाटियों में स्थित 40 टीलों तथा घग्घर (प्राचीन सरस्वती) की उपत्यका में स्थित बीस अन्य खण्डहरों में पाये गये हैं। मनु के वृत्तान्त से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक आर्य लोग इन्हीं नदियों के तट पर (सरस्वती) मन्त्ररचना एवं अपने दैनिक कृत्यों को किया करते थे। मनु ने सरस्वती तथा दृष्द्वती

के बीच के भाग को ब्रह्मावर्त माना है (तं देव निर्मितं देषं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते)। ऋग्वेद से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है—

"अम्बितमे नदीतमें देवितमें सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥"

सम्भवतः इसी आधार पर पुरातत्व विज्ञों ने उपर्युक्त स्थल पर उपलब्ध हुई सभ्यता को आर्यों की सभ्यता माना है, पर यह कहाँ तक सत्य है, निश्चयपूर्वक कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। बी० बी० लाल और केदारनाथ शास्त्री के द्वारा प्रस्तुत किये गये विभिन्न मत, किन्हीं ठोस प्रमाणों पर आधारित न होने के कारण, प्रमाणित नहीं माने जा सकते। यहाँ तक, कुछ विद्वानों ने 'काल 2' की स्तर में उपलब्ध की ऐतिहासिकता में भी सन्देह व्यक्त किया है। श्री बी० बी० लाल ने हस्तिनापुर के 'काल 2' की सभ्यता में उपलब्ध 'चित्रित सलेटी कुम्भकला' के थे सलो, लेक उर्मिया (ईरान) और सीस्तान की सभ्यता के समतुल्य माना है। बी० बी० लाल द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त मत पर भी विद्वानों ने संदेह व्यक्त किया है।

अधिकांश विद्वानों ने इन टीलों को महाभारत कालीन हस्तिनापुर को खण्डहर माना है। उत्खनन करने के पश्चात् श्री बी० बी० लाल इस निर्णय पर पहुँचे कि 'काल-2' की खुदाई में उपलब्ध 'चित्रित सलेटी कुम्भकला' के निर्माता वैदिक आर्य थे जो इस स्थान पर ई० पू० 1100 से 800 तक आबाद रहे और बहुत संभवतः इस सभ्यता का अन्त गंगा में बाढ़ के फलस्वरूप हुआ था। इस प्रकार से बी० बी० लाल ने उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान लगाया कि सम्भवतः द्वितीय काल के स्तर की आबादी 300 वर्ष तक (1100-800 ई० पू०) जीवित रही। द्वितीय काल के प्रारम्भ और अन्त की तिथियों के सम्बन्ध में वे पुनः लिखते हैं—यदि हम ई० पू० 800 वाली प्रचंड बाढ़ को 'काल 2' की आबादी का अन्त मान लें तो इस काल के 7 फुट ऊँचे की स्तर की सारी आयु की इयत्ता नियत करना असम्भव नहीं। इस खण्डहर के प्रसंग में 7 फुट ऊँचे मलवे के भराव के लिए तीन सौ वर्ष का अनुमान उचित ही होगा। इसलिए 'काल 2' की सबसे नीचे की तह के लिए ई० पू० 1100 की तिथि नियत करना असंगत नहीं है।[1]

हस्तिनापुर में चित्रित धूसर कुम्भकला के साथ घोड़े की हड्डियाँ मिली हैं और आर्य लोग भी घोड़ों से परिचित थे। इस आधार पर भी उत्खाता महोदय ने अनुमान लगाया कि ये सम्भवतः आर्यकालीन घोड़ों की ही हड्डियाँ हैं। कौशाम्बी में मिले हुए पात्र चित्रित नहीं हैं लेकिन वे अन्य साक्ष्यों में चित्रित धूसर मृद्भाण्ड के समतुल्य हैं। इन पात्रों के आधार पर उत्खाता महोदय ने यह अनुमान लगाया कि शायद यह अपनी पतनावस्था में पहुँच चुके थे। कौशाम्बी में उपलब्ध मृद्भाण्ड, यद्यपि चित्रित नहीं थे तथापि 'चित्रित धूसर मृद्भाण्ड' के समतुल्य (अन्य दशाओं में) प्रतीत होते हैं। अत्यन्त क्षीण मृद्भाण्डों की उपलब्धि पर श्री बी० बी० लाल ने अनुमान लगाया कि शायद इस स्तर के लोग अपनी अन्तिम अवस्था पर पहुँच चुके थे। कुछ अन्य विद्वानों ने यह अनुमान लगाया कि यदि हम चित्रित धूसर मृद्भाण्ड की सभ्यता को आर्यों की सभ्यता मान लें तो यह आर्यों के समूह का भारत की ओर आगमन का द्वितीय उदाहरण होगा। हस्तिनापुर में चित्रित धूसर मृद्भाण्ड के साथ जले हुए चावल के टुकड़े मिले हैं, पर हरप्पा में नहीं, लेकिन वैदिक काल में मिले हैं, जो आर्यों से परिचित सभ्यता के द्योतक प्रतीत होते हैं, थिसली और सीस्तान में कुछ चित्रित धूसर मृद्भाण्ड से मिलते जुलते हुए बर्तन मिले हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि यह समानता बाहरी ओर से आर्यों के आगमन का प्रमाण दे सकता है। कुछ अन्य विद्वानों का अनुमान हैं कि यदि हम पी० जी० वेर को आर्यों से सम्बन्धित करें तो यह बाद में आने वाली शाखा होगी।

---

1. केदारनाथ शास्त्री, सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा, पृ० 232–233 और हस्तिनापुर 'एक्सकेवेशन्स एण्ड दि आर्यन प्राब्लेम "27 फरवरी, 1955 के हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित—

काल 2 की आयु में सम्बन्ध में केदारनाथ शास्त्री ने अपने निम्न विचार व्यक्त किये हैं—"पुराणों तथा महाभारत में स्पष्ट उल्लेख है कि हस्तिनापुर नगर की नींव डालने वाला राजा हस्तिन् था। पार्जीटर महोदय की राजवंशावलियों के अनुसार यह राजा चन्द्रवंश की पौरवशाखा में अभिमन्यु का 45वाँ पूर्वज था। निचक्षु अभिमन्यु से छः पीढ़ी और नीचे था। इस गणना के अनुसार निचक्षु और हस्तिन् के बीच 50 पीढ़ियों का अन्तर पड़ जाता है। पुराणों में यह भी लिखा है कि पुरुवंशी राजाओं की पुरानी राजधानी प्रयाग के पास प्रतिष्ठान नगर था जिसे राजा दुष्यन्त अथवा उनके पुत्र भरत ने त्याग दिया था और उसके बजाय हस्तिनापुर के स्थान पर नयी राजधानी की स्थापना की थी। भरत राजा हस्तिन का पाँचवाँ पूर्वज था। इसलिये यह मान लेना युक्तिसंगत होगा कि वह स्थान जहाँ इस समय हस्तिनापुर के खण्डहर खड़े हैं राजा भरत से लेकर निचक्षु तक लगातार पचपन पीढ़ियाँ पुरुवंशी राजाओं की राजधानी रही। अब यदि पूर्वोक्त क्रमानुसार पचपन पीढ़ी राजाओं में से हर एक को 18 वर्ष का शासनकाल दें तो पचपन राजाजों का संयुक्तकाल 990 (55 × 18), अर्थात् एक हजार वर्ष के लगभग बैठता है। अत: हस्तिनापुर के खण्डहर में उत्खात काल-2 के स्तर की आयु का मान यही होना न्याच है।[1]

अन्य आबादियो के लोग विशेषकर समृद्ध प्रतीत होते हैं। तृतीय काल में उत्तरकृष्णमार्जित मृद्भाण्ड, पक्की ईंटों की नालियाँ, सोक कुएँ या गड्ढे, घड़े और रिंग वेल्स उपलब्ध हुए हैं, जो अपनी विशिष्टताओं से युक्त हैं। लौह का प्रचुर प्रयोग इस युग में हो रहा था। हाथियों की स्थूलकाय चित्रित आकृतियाँ इस युग में हमको देखने को मिलती हैं। बी० बी० लाल महोदय ने काल 3 की आबादी की आयु 300 वर्ष निर्धारित की है और यह निर्णय दिया कि इसका आरंम्भ ई० पू० 600 में और अन्त ई० पू० 300 के आस-पास हुआ था।

चतुर्थ काल में द्वितीय शताब्दि ई० पू० के मथुरा के शासक के सिक्के मिले हैं। ये सिक्के चौकोर और गोलाकार के हैं। बी० बी० लाल महोदय ने इस सभ्यता का काल ई० पू० 200 से ई० सन् 300 तक निर्धारित किया है। इस तिथि के सम्बन्ध में अधिकांश विद्वानों की यही धारणा है। इस युग के विषय में अन्य विद्वानों की धारणा है :—

"Money now comes into use in the shape of Punch marked rectangular pieces of silver with symbols which include the 'crescent on hill' and the Sun with them were a number of cast copper coins, both rectangular and round, bearing similar symbols. The indication is that of increasing and increasingly systematized trade."

'इस युग की सभ्यता के द्योतक उपकरण, अहिच्छत्र, इन्द्रपत और तिलपत नामक स्थानों पर प्रचुर मात्रा में पाये गये हैं।'

"Between them, the two sites of Hastinapur and Ahichchhatra, imperfect though our knowledge be of both, proclaim the emergence of a comfortable and organized city life in the Jamna Ganges basin sometime in the first half of the Ist millennium B. C. To this period belongs the earliest settled occupation known to us in the Delhi region, at the purana Qila (Indrapat) which may fairly be described as the first Delhi, and Tilpat thirteen miles to the South."

---

1. सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा, पृ० 233

श्री बी० बी० लाल ने पंचम युग की तिथि ई० सन् 1100 से 1500 ई० तक निर्धारित की है।

चित्र 1—हस्तिनापुर टीले का स्तर विन्यास

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर सम्भावनात्मक रूप में यह कह सकते है कि हस्तिनापुर के काल 1 व 2 की सभ्यता वैदिक कालीन आर्य संस्कृति की परिचायक थी। इसके अतिरिक्त हमारे पास कोई ऐसा प्रामाणिक साक्ष्य नहीं है जिसके आधार पर तत्कालीन सभ्यता को किसी अन्य सभ्यता से सम्बन्धित कर सकें। अन्य तीन आबादियों की सभ्यतायें अपने विभिन्न युगों के विकास की परिचायक हैं। विशेषकर तृतीय काल लौहयुग के विकास का चरमोत्कर्ष युग था, जिसकी पुष्टि वहाँ से प्राप्त लौह धातु के बने हुए विभिन्न उपकरणों से प्रतीत होती है। विभिन्न कालों के बीच के मलवे का भराव उस युग के पतनोन्मुख दशा का सूचक है। इस कालों की आबादियों का पतन सम्भवत: बाढ़, अग्नि या विदेशी आक्रान्ताओं के कारण हुआ होगा। ये विदेशी आक्रमणकारी बहुत सम्भवत: आर्य थे जिनकी संस्कृति वहाँ पर बहुत दिनों तक फलती फूलती रही। काल 2 या 3 से कुम्भकला के अत्यन्त उत्कृष्टतम उदाहरण प्राप्त होते हैं। चित्रित धूसर और उत्तर कृष्ण मार्जित सभ्यतायें दोनों एक दूसरे की चिर सहचरी बनी हुई अपने विकास में तत्पर थीं।

अध्याय | 2

रंगपुर

यह पूर्व लिम्ब्दि राज्य (Limbdi State) के मदर नदी तट पर स्थित है। यह धन्धुक रेलवे स्टेशन से 3 मील तथा लोथल के 30 मील उत्तर-पूर्व में है। यहाँ पर सर्व प्रथम खुदाई माधव स्वरूप वत्स ने 1985 ई० में की थी। उन्होंने चार क्षेत्रों में 7 फीट गहरे गड्ढे खोदे। इनमें भवनों के तो कोई अवशेष नहीं दीख पड़े किन्तु हड़प्पा शैली की बहुत सी वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर उन्होंने इसे सिन्धु संस्कृति से प्रभावित क्षेत्र के अन्तर्गत घोषित किया। सन् 1947 में श्री मोरेश्वर दीक्षित ने फिर उत्खनन कराया और उपलब्ध हुए प्रमाणों के आधार पर इस स्थान की सभ्यता को सिंधु युग के उत्तरकाल से सम्बन्धित बतलाया। तत्पश्चात् श्री एस० आर० राव ने इस खण्डहर की लगातार कई वर्षों तक खुदाई की और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रंगपुर का टीला सिंधु संस्कृति का है। अब प्राय: सभी विद्वानों द्वारा यह मान्य हो गया है कि रंगपुर कालीन संस्कृति सिंधु संस्कृति ही है।

यहाँ से उपलब्ध हुई सभ्यता को हम प्रमुख तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम पूर्व मृद्भाण्ड माइक्रोलिथिक सभ्यता थी। इस सभ्यता के अन्तर्गत केवल पत्थर के छोटे-छोटे उपकरण उपलब्ध हुए हैं। मिट्टी के बर्तनों का पूर्णतया अभाव है। प्रथम स्तर की सभ्यता के साथ हड़प्पा कालीन संस्कृति के कोई उपकरण नहीं मिलते हैं। द्वितीय स्तर सभ्यता में हड़प्पा कालीन संस्कृति के चिह्न उपलब्ध थे। यहाँ पर उपलब्ध हुए विविध उपकरणों के आधार पर हम इस सभ्यता के विकास को तीन मुख्य चरणों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम चरण की सभ्यता के मृद्भाण्ड थोड़ा बहुत अन्तर के साथ हड़प्पा कालीन संस्कृति के प्रतीत होते हैं। द्वितीय चरण की सभ्यता में उपलब्ध हुए मृद्भाण्ड पूर्णतया हड़प्पा कालीन संस्कृति के द्योतक हैं। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि प्रथम स्तर के लोगों के छोड़ देने के पश्चात् यह स्थान बहुत दिनों तक निर्जन पड़ा रहा, जिसकी पुष्टि प्रथम और द्वितीय स्तरों के बीच में उपलब्ध हुए मलवे के बहुत बड़े भराव से होती है। तत्पश्चात् सिन्धु सभ्यता वासी यहाँ पर आये और उन्होंने अपनी कला-कृतियों का विकास किया। द्वितीय चरण की सभ्यता इस तथ्य की पुष्टि का स्पष्ट प्रमाण है। तृतीय चरण की सभ्यया में कुछ विशेष परिवर्तनों के साथ मृद्भाण्डों का संस्कार हुआ। विभिन्न नवीन मृद्भाण्डों की उत्पत्ति हुई। यह हड़प्पा सभ्यता की प्रौढ़ावस्था का काल था। इस प्रकार से प्रथम चरण की सभ्यता हड़प्पा वासियों के आगमन, द्वितीय चरण की सभ्यता उनके विकास तथा तृतीय चरण की सभ्यता उनकी प्रौढ़ावस्था की सूचक है एस० आर० राव महाशय ने तीनों चरणों की सभ्यता की तिथि निम्न ढंग से निर्धारित की है—(1) 2000=1500 बी० सी०

(2) 1500=1100=1200 बी० सी०

(3) 1000=8000 बी० सी०

इसी प्रकार से राव महोदय ने प्रथम स्तर की सभ्यता की तिथि 3000 बी० सी०, निर्धारित की है। प्रथम स्तर तथा द्वितीय स्तर की सभ्यता के बीच एक लम्बे काल का व्यवधान होने के कारण इसकी हड़प्पा संस्कृति से सम्बन्ध स्थापित करना पूर्णतया असम्भव हो जाता है। द्वितीय स्तर की सभ्यता में प्राप्त हुए विभिन्न उपकरण निम्न हैं— मृद्‌भाण्ड, हथियार, औजार, तौल मानक, मालायें, आदि। साथ हो यहाँ पर नगर निर्माण योजना के उपकरण भी बहुतायत में पाये गये हैं। यहाँ के लोग कच्ची पक्की दोनों प्रकार की ईटों का उपयोग अपने मकानों के बनाने में करते थे। उत्खनन से ईंटों से निर्मित ढांचे, नालियाँ, कच्ची ईटें तथा चहारदीवारों के अवशेष स्पष्ट रूप से उपलब्ध हुए हैं। सबसे अधिक मात्रा में मिट्टी से बने हुए विविध पात्र उपलब्ध हुए हैं। पात्रों में कटोरे और आधारित तश्तरियाँ प्रमुख हैं। इनके ऊपर मोर की आकृति लाल धरातल पर काले रंग से चित्रित हैं (Black over a red surface) इन पात्रों का आकार-प्रकार, बनावट तथा चित्रकारी पूर्णतया हड़प्पा कालीन संस्कृति की परिचायक है। बाद में कुछ अन्य नये पात्रों का भी निर्माण हुआ। यहाँ पर डा० संकालियाँ का मन्तव्य महत्वपूर्ण है—

"It included triangular terracotta cakes, faience and steatite beads, a chert blade and pottery with a peacock pattern, all allied to Indus types. Its thick red pottery, on the other hand, painted in Black or chocolate with loops, dots, criss-cross, and horizontal and oblique lines, is less distinctively Harappan. It is to be expected that dilution or partial survival of this sort should occur near the periph:ry of the civilization."

तृतीय काल की सभ्यता की तिथि राव महोदय ने 1000 से 800 ई० पू० निर्धारित की है। इस सभ्यता के अत्यन्त उच्च स्तर पर काले और लाल मृद्‌भाण्ड, लगभग 1000 यू० पी० के उपलब्ध हुए हैं। ये मृदभाण्ड दक्षिणी भारत के महाश्म मृद्‌भाण्डों से साम्य रखते हैं। इसी प्रकार के अन्य उपकरण, लोथल और मध्य काठियावाड़ के रोसदि नामक स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं, द्वितीय और तृतीय काल की सभ्यता के बीच व्यवधान न होने के कारण, दोनों सभ्यताओं के ऐतिहासिक और तैथिक क्रम निर्धारित करने में पूर्ण सहायता मिली है।

रंगपुर से सोने, चाँदी, पत्थर, फियांस हाथी दाँत, शंख आदि द्रव्यों के बने हुए भूषण भी मिले हैं। पर ये बहुत थोड़े तथा निकृष्ट कोटि के होने के कारण हड़प्पा कालीन भूषणों से बहुत कम साम्य रखते हैं। इसी प्रकार से ताँबे और काँसे के शस्त्रोपकरणों और बर्तनों के समुदाय भी उपलब्ध हुए हैं। यहाँ पर कई एक कब्रिस्तान भी उपलब्ध हुए हैं जो तत्कालीन शव पद्धति पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। अधिकाँशतः कब्रों में मृतक शरीरों के साथ मिट्टी के पात्र तथा अन्य विभिन्न उपकरण रख दिये जाते थे। किन्तु यहाँ पर एक ऐसा कब्रिस्तान मिला है जिसमें सर्व प्रथम शव पात्रों को जमीन के अन्दर गाड़ दिया गया था तत्पश्चात् उसके ऊपर मृतक शरीर रख कर गड्ढा आच्छादित कर दिया गया था। आधुनिक शव प्रथाओं की भाँति मृतक शरीर का शीर्ष भाग उत्तर दिशा की ओर होता था।

केदारनाथ शास्त्री का मत है कि संभवतः "ये 'कब्रिस्तान एच' के ही लोग थे जो सिन्धु संस्कृति के लोगों का अनुसरण करते हुए हड़प्पा से चलते-चलते उस समय रंगपुर पहुँचे जब हड़प्पा संस्कृति अन्तिम क्षणों में थी।" वह पुनः अपना मत प्रस्तुत करते हैं "रंगपुर के एक बर्तन पर चित्रित मोर भी सिद्ध करता है कि सिन्धु संस्कृति का यह रूप उत्तर कालीन, अवनत और निकृष्ट था। यह हड़प्पा के बर्तनों पर बने हुए मोरों से इतना भिन्न है कि इसे सिन्धु संस्कृति की कला कृति कहने में मन सकुचाता है। रंगपुर का मोर हड़प्पा के मोर का विकृत रूप है और निस्सन्देह इस संस्कृति के अवनति काल का है। रंगपुर और लोथल में लाल और मटियाली कुम्भकलाओं के ठीकरे जो समान स्तरों में मिले हैं इस तथ्य का अतिरिक्त प्रमाण हैं कि रंगपुर में उद्‌घाटित सिन्धु संस्कृति का रूप इसके ह्रास-काल का है। हड़प्पा और मोहेंनजोदड़ो में सिन्धु संस्कृति के स्तरों में केवल लाल कुम्भकला के ही खंड मिले थे। रंगपुर और लोथल में हड़प्पा

संस्कृति के स्तरों में एक साथ लाल और मटियाली कुम्भ कलाओं का मिलना इस बात का प्रतीक है कि सौराष्ट्र के निवासी सिन्धु संस्कृति के लोगों और हड़प्पा निवासी उनके पूर्वजों में एक लम्बे समय का व्यवधान पड़ चुका था।"

इंडियन आर्कियोलाजी (सन् 1954-55) में लिखा है कि 'रंगपुर में हड़प्पा संस्कृति अपनी स्वाभाविक मौत से मरी। यह धीरे-धीरे क्षीण होती गयी और अन्त में उत्तरकालीन 'चमकीली लाल कुम्भकला' की संस्कृति में परिणित होकर अपनी स्वतंत्र सत्ता को अशेषत: खो बैठी।'

भारत-पुरातत्व-विभाग की रिपोर्ट में भी लिखा है कि "रंगपुर और रोपड़ के स्थानों में हड़प्पा संस्कृति के लोगों की पहली बस्ती ईसा पूर्व 2000 के लगभग शुरू हुई और ईसा पूर्व 1500 के आस पास समाप्त हो गयी। इसके अनन्तर रोपड़ में कई विजातीय लोग जो चित्रित सलेटी कुम्भकला का प्रयोग करते थे, आकर बस गये। परन्तु रंगपुर में हड़प्पा संस्कृति के लोग धीरे-धीरे बदलते गये और अन्त में 'चमकीलो लाल कुम्भकला' के निर्माताओं के रूप में परिणत हो गये।"

केदारनाथ शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द हड़प्पा' में लिखा है रंगपुर और रोपड़ की कलाकृतियाँ उस क्षीयमाण संस्कृतिधारा के टपकते हुए बिन्दुओं के समान हैं जिसके जीवन भूत पोषक स्रोत चिरकाल से सूख रहे थे या यूँ कहिए कि ये उन उत्तम संस्कृति दीपशिखा की छाया मात्र थीं जिसकी प्राण रूप तैलधारा अब विच्छिन्न हो रही थी। सिन्धु सयभ्ता जब अपनी जन्मभूमि में उत्सन्न हो गयी तो रोपड़ और रंगपुर में उत्खात अवनत दशा तक पहुँचने के लिए इसे कुछ शताब्दियों का समय अवश्य लगा होगा। साधारणत: किसी संस्कृति की उत्कृष्ट विशिष्टताओं को अशेषत: भूलने के लिए उतना ही समय आवश्यक है जितना उन्हें सीखने और उन्नत करने के लिए उत्खाताओं के विचार के अनुसार रंगपुर और रोपड़ में उद्घाटित हड़प्पा संस्कृति का रूप ईसा पूर्व 2000-1500 वर्ष की सीमा के अन्दर पड़ता है। रंगपुर और रोपड़ से जो वस्तुएँ मिली हैं कला के दृष्टि से वे निकृष्ट कोटि की, प्रौढ़ सिन्धु सभ्यता की अप्रतीक और वैयक्तिक विलक्षणताओं से हीन थीं।

पुरातत्व की दृष्टि से रगपुर और रोपड़ के प्रागैतिहासिक खण्डहरों का अपना वैयक्तिक महत्व है। जो उपलब्धियाँ इन स्थानों में हुईं वे भारत के अन्धकार पर प्रकाश की धीमी सी किरण डालती हैं। उनसे पता लगता है कि सिन्धु सभ्यता के पतन (ई० पू० 2000) तथा ईसा पूर्व छठीं शताब्दी के मध्यवर्ती काल में प्राय: पाँच सौ वर्ष (ई० पू० 1100-600) तक एक अज्ञात जाति के लोग गंगा और सतलज की उच्च अधित्यकाओं तथा आस-पास के क्षेत्रों में निवास करते थे।[1]

1—इण्डियन आर्कियोलाजी, 1954-55, पृ० 9-13 तथा, केदारनाथशास्त्री, सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा, पृ० 227)

रूपड़

हड़प्पा से 220 मील पूर्व सतलज नदी के तट पर रूपड़ नामक स्थान है। यहाँ पर सर्वप्रथम खुदाई माधव स्वरूप वत्स ने की थी। उन्होंने चार क्षेत्रों में 7 फीट गहरे गड्ढे खोदे। इनमें भवनों के तो कोई अवशेष नहीं दीख पड़े किन्तु हड़प्पा शैली की बहुत सी वस्तुएँ मिलीं। इसी के आधार पर उन्होंने तत्कालीन स्थानीय संस्कृति को हड़प्पा संस्कृति से सम्बन्धित बतलाया।

रंगपुर कालीन संस्कृति के सदृश इस स्थान की संस्कृति को भी मुख्य तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

1—पूर्व हड़प्पा कालीन

2—हड़प्पा कालीन

3—उत्तर हड़प्पा कालीन

द्वितीय काल की संस्कृति को मुख्य तीन चरणों में बाँटा गया है। प्रथम चरण में कुम्भ कला हड़प्पा कालीन संस्कृति के सदृश है। गोबलेट और बीकर बहुत कम संख्या में उपलब्ध हुए हैं। कार्नेलियन, एजेट, स्टीटाइट और सुवर्ण के बीड्स (Beads, बहुतायत मात्रा में उपलब्ध हुए हैं। अन्य उपलब्ध उपकरण भी हड़प्पा कालीन संस्कृति के समतुल्य हैं। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि सम्भवत: बाढ़ के फलस्वरूप इस स्थान के निवासियों ने अपना स्थान त्याग कर उच्च टीले के शिखर पर निवास बनाया। द्वितीय चरण के पात्र कला विहीन हैं। गोबलेट और बीकरों की पूर्णतया अनुपस्थिति है। बैल (Handed Bull) का प्रचलन जारी रहा। मृद्भाण्ड हड़प्पा संस्कृति के समतुल्य नहीं थे। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि सम्भवतः यह संस्कृति अपने पतन की दिशा की ओर उन्मुख हो रही थी।

तृतीय चरण की संस्कृति में पूर्णतया परिवर्तन आ जाता है। कुछ पुराने पात्रों का प्रचलन बन्द हो जाता है और उनका स्थान नये पात्र ले लेते हैं। पात्र साधारणतया लाल रंग से चित्रित तथा ज्यामितीय डिजाइनों से अलंकृत हैं। इस युग में एक नवीन चमकीली लाल कुम्भ कला (Lustrous Redware) का प्रादुर्भाव होता है जिसका स्पष्ट विकास तृतीय काल की सभ्यता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

सतीशचन्द्र काला ने अपनी पुस्तक सिन्धु सभ्यता के पृष्ठ 102 पर लिखा है—खुदाई में सबसे नीचे की तह पर, जिसका काल 500 वर्ष के लगभग है, मोहेंन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा के ढंग की वस्तुएँ, जैसे मनके, पीतल के हथियार, चकमक पत्थर के चाकू तथा एक लेख सहित मुद्रा प्राप्त हुई। ऐसा लगता है कि कुछ समय के लिए यह स्थान छोड़ दिया गया था। ई० पू० 1000 के लगभग एक नई परम्परा तथा जाति के लोग फिर यहाँ पर आकर बसे। ये लोग पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी राजस्थान, तथा पंजाब में व्याप्त स्लेटी रंग के वर्तनों का प्रयोग करते थे। ई० पू० पाँचवीं सदी के मध्य में फिर एक नवीन

चरण प्रारम्भ हुआ। इस युग के बहुत से सिक्के, मुद्रायें तथा मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें हाथीदाँत में अंकित मुद्रा जिसपर मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में 'भदपलस' लिखा है, उल्लेखनीय है। ई० पू० दूसरी से लेकर छठी सदी ईस्वी तक भी रुपड़ में बस्ती रही। इस तह में भारतीय यूनानी (इंडो-ग्रीक) राजाओं से लेकर चन्द्रगुप्त प्रथम तक के सिक्के प्राप्त हुए। इसी तह में 600 कुषाणकालीन सिक्कों का एक ढेर भी मिला था। मध्यकाल में रुपड़ में मुसलमानी आधिपत्य रहा। इसके प्रमाण में ऊपरी तह निकले चमकीली पालिश लिए बर्तन तथा सिक्के हैं। रुपड़ की खुदाइयों में मकानों के थोड़े से ही अवशेष मिले हैं। इनसे यह स्पष्ट है कि सबसे नीचे की तह से बराबर पक्की ईंटों का प्रयोग हुआ है। रुपड़ ही एक ऐसा स्थल है जहाँ पर कि प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक युग की सामग्री क्रमिक ढंग से प्राप्त हुई है।[1]

सोने चाँदी पत्थर, फियाँस, हाथी दाँत, शंख आदि द्रव्यों के बने हुए भूषण भी यहाँ पर बहुत थोड़े और निकृष्ट कोटि के मिले हैं। साथ ही यहाँ पर ताँबे और काँसे के शस्त्रोपकरणों और बर्तनों के समुदाय भी हस्तगत हुए हैं। मिट्टी के चित्रित बर्तनों की प्रौढ़ कला के प्रतीक अलंकरण यथा टोकरा, टी—आकार, उलझे हुए वृत्त, जाल दो मुँहा कुल्हाड़ा आदि द्रष्टव्य हैं। यहाँ की कुम्भकला पर शमी, केला, ताड़, मछली, मोर और बकरा की आकृतियाँ हड़प्पा कालीन संस्कृति के अधिकांशत: समतुल्य हैं।

यहाँ पर उत्खनन से चित्रित सलेटी कुंभकला के विशेष अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इस कुम्भकला के सम्बन्ध में केदारनाथ शास्त्री का मन्तव्य महत्वपूर्ण है—"रोपड़ के खण्डहर की खुदाई में सिन्धु सभ्यता और 'चित्रित सलेटी कुम्भ-कला' की संस्कृति के बीच जो लम्बा व्यवधान है वह पुरातत्ववेत्ता के लिए एक समस्या है। यदि चित्रित्त सलेटी कुम्भ-कला के निर्माता वैदिक आर्य थे, तो इस स्थान पर इनके साथ सिन्धु सभ्यता के लोगों के सम्पर्क का अवश्य प्रमाण मिलना चाहिये था क्योंकि यह स्थान गंगा के रम्य और समृद्ध मैदान में प्रवेश करने का द्वार था। वैदिक आर्यों के आने के पहले यह क्षेत्र सिन्धु संस्कृति के लोगों के अधिकार में था जिनके सम्बन्ध में साधारण धारणा है कि वे भारत की मूल जातियों में से एक थे। प्राचीन साहित्य के उल्लेखों से पता लगता है कि भारत की मूल जातियों को पराजित करने तथा उन्हें अपने वश में लाने के लिए आर्य जाति को चिरकाल तक कठोर संघर्ष करना पड़ा था। रोपड़ में जो साक्ष्य प्रकाश में आया है उससे यह संघर्ष सिद्ध नहीं होता। अत: अनुसन्धानों को ऐसे प्राचीन स्थानों की खोज करनी चाहिये जहाँ इस संघर्ष के प्रमाण दृष्टिगोचर हो। जब तक यह खोज सफल नहीं होती यह सिद्ध करना कि "चित्रित सलेटी कुम्भकला के निर्माता वैदिक आर्य थे, निरर्थक है।"

रोपड़ संस्कृति में कुछ कब्रिस्तान मिले हैं जो हड़प्पा के "कब्रिस्तान-आर-37" से साम्य रखते हैं। इन कब्रिस्तानों में विभिन्न प्रकार के शव-पात्र उपलब्ध हुए हैं। कुछ विशेष तत्वों तथा विलक्षणताओं से हीन होने के कारण ये शव-पात्र प्रौढ़ हड़प्पा कालीन संस्कृति के द्योतक न होकर, उसके उत्तरकालीन रूप के परिचायक मात्र हैं। इंडियन आर्किलाजी 1953-54 में लिखा था कि रोपड़ में उद्घाटित हड़प्पा संस्कृति का रूप पूर्ण विकसित, प्रौढ़ एवं सब लक्षणों से युक्त था परन्तु 1954-55 के संस्करण में पुरातत्व विभाग ने यह संशोधन कर दिया है कि "रोपड़ में सिन्धु-संस्कृति का जो रूप प्रकाश में आया वह प्रौढ़ हड़प्पा संस्कृति का उत्तरकालीन रूप है। अब प्रायः सभी विद्वानों की यह मान्य धारणा है।

———

१. इंडियन आर्कियोलाजी, 1953-54

अध्याय | 4

कालीबंगान

यह स्थान राजस्थान में घग्गर (घग्घर) नदी के किनारे पर स्थित है। यहाँ पर उत्खनन से हड़प्पा कालीन और उससे प्राचीन संस्कृति के चिन्ह उपलब्ध हुए हैं। उत्खनन कर्ताओं ने यहाँ पर दो टीलों की खुदाई की जिनमें एक टीला दूसरे के अपेक्षाकृत आकार में बड़ा और ऊँचा है।

टीला नं० 1—इस टीले की उपरी सतह में हड़प्पा कालीन संस्कति के चिन्ह तथा इस सतह से थोड़ा नीचे एक दूसरी परत में पूर्व हड़प्पाकालीन अवशेष उपलब्ध हुए हैं। उसके अतिरिक्त उपयुक्त टीले में चहार दीवारी के अवशेष, बुर्जों के निशान और निर्मित प्लेटफार्म उपलब्ध हुए हैं। इन प्लेटफार्मों के आकार और बनावटों को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि इनका निर्माण बाद में हुआ होगा और बहुत संभवतः दीवालों के संस्कारों के पश्चात् प्लेटफार्मों के आकारों में वृद्धि की गयी होगी। इस टीले के दक्षिण ओर रक्षात्मक दीवालों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। उत्खाताओं का अनुमान है कि संभवतः इन दीवालों का निर्माण बाहरी नवागन्तुकों ने किया होगा। दीवालें ढलुवाकार की बनी हुई थीं जिसपर पलस्तर से कुछ चिन्ह दर्शित होते थे। यहाँ पर उत्खनन से कुछ मृद्‌भाण्ड भी उपलब्ध हुए हैं परंतु इनका सम्बन्ध किस काल की संस्कृति से था, ऐसा निश्चित करना असम्भव है।

टीला नं० 2—प्रस्तुत टीले के उत्खनन से हड़प्पा और पूर्व-हड़प्पा कालीन संस्कृति के उपकरण समान स्तर पर उपलब्ध हुए हैं जिसके अवलोकन से यह विदित होता है कि सम्भवतः ये दोनों सभ्यतायें आस-पास में स्थित फल-फूल रही थीं और पूर्व-हड़प्पा संस्कृति का स्थान हड़प्पा संस्कृति ने धीरे-धीरे ग्रहण करना शुरू कर दिया था। इस टीले के विशेषकर ऊपरी सतह पर हड़प्पा कालीन संस्कृति के ही अवशेष उपलब्ध हुए हैं। हड़प्पा की अपेक्षाकृत यहाँ पर लकड़ी की बनी हुई नालियाँ (Wooden drains) उपलब्ध हुई हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ पर मनके, खिलौने, चेस बोर्ड, विभिन्न ताम्र, कास्य और पत्थर के उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। ये समस्त उपकरण हड़प्पा कालीन संस्कृति के उपकरणों के समतुल्य है। साथ ही यहाँ पर बीकर, कटोरे, घड़े और आधारित तश्तरियाँ आदि मृद्‌भाण्ड उपलब्ध हुए हैं। ये सभी पात्र अपने आकार बनावट और चित्रण में एक विचित्रात्मक शैली में निर्मित हुए प्रतीत होते हैं।

उत्खनन से उपलब्ध हुए प्रमाणों के आधार पर यह विदित होता है कि यहाँ के नगर कई ब्लाकों में बँटे हुए थे और प्रत्येक ब्लाक के गृह में 6 या 7 कमरे बने होते थे। कहीं-कहीं पर मकानों में कुएँ भी बने होते थे। मकान साधारणतया कच्ची ईंटों के बने होते थे और उनके अपर मिट्टी से प्लास्तर कर दिया जाता था। यहाँ पर उत्खनन से लकड़ी की शहतीरें उपलब्ध हुई हैं जिससे आभास होता है कि इनका उपयोग सम्भवतः छतों के निर्माण में किया जाता था। कुछ गृहों में अग्नि-वेदि के चिह्न मिले हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि यहाँ के निवासी वैदिक देव (अग्नि) की उपासना किया करते थे या अग्नि-वेदि में आहुति डालने का विधान घर-घर में प्रचलित था। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह विदित होता है कि सम्भवतः यहाँ के निवासी आर्य लोग ही थे जो हड़प्पा सभ्यता के चरम अवसान में यहाँ पर आकर बस गये थे।

यहाँ पर भैंस, सुअर, भेड़, बकरी, कच्छप, ऊँट, हस्ति, गधे, गैंडा, चीता और कुछ पक्षियों के हड्डियों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। हड़प्पा लिपि के सदृश यहाँ पर एक मुद्रा भी उत्खनन से उपलब्ध हुई है जिस पर श्री बी० बी० लाल ने दाहिने से बाईं ओर और सम्भवत: बाईं से दाईं ओर उत्कीर्ण लेख पढ़ा था। इस प्रकार की लेखन-विधि बुस्त्रोफेदन के नाम से अभिहित की गयी है।

दक्षिणी किला के टीले से 300 मीटर की दूरी पर दो कब्रिस्तान के अवशेष उपलब्ध हुए हैं जिसमें दो भिन्न प्रकार की शव विधियों का उपयोग किया गया था। प्रथम कब्रिस्तान में मृतक शरीर अपने शवपात्रों सहित गड्ढे में दफनाई गई थी। इस प्रकार की शव संस्कार विधि को कहते हैं। द्वितीय कब्रिस्तान में मृतक शरीर को किसी पात्र के अन्दर शव पात्रों सहित दफनाया जाता है। इस विधि को Cremation burial कहते हैं। कब्र सामग्रियों में विभिन्न प्रकार के मृद्‌भाण्डों की बहुलता है। यदि यह मान लिया जाय कि इन टीलों का उपयोग हड़प्पा के टीलों के सदृश होता था तो दोनों सभ्यताओं में सामंजस्यता स्थापित करना बहुत आसान हो जाता है। हड़प्पा के टीले के सदृश इस स्थान का पूर्वी टीला भी बड़ा है तथा एक विस्तृत नगर योजना का सूचक प्रतीत होता है। दूसरा टीला आकार में छोटा है। यहाँ पर उपलब्ध नगर योजना के आधार पर प्रतीत होता है कि सम्भवत: इसका निर्माण उच्च श्रेणी के लोगों के निवासार्थ किया गया था। अधिकांश विद्वानों ने इन्हीं उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर इस सभ्यता को हड़प्पा की तीसरी राजधानी के रूप में माना है।

अध्याय | 5

लोथल

(LOTHAL)

यह सौराष्ट्र का महत्वपूर्ण प्रागैतिहासिक खण्डहर है। यहाँ पर रंगपुर और रोपड़ की अपेक्षाकृत अधिक विकसित मात्रा में हड़प्पा संस्कृति के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। खण्डहर की स्तर रचना से यह विदित होता है कि रंगपुर और रोपड़ की अपेक्षा लोथल पाँच सौ वर्ष अधिक प्राचीन था। विशाल संख्या में, हड़प्पा संस्कृति के समुतुल्य प्राप्त हुए उपकरणों से, स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस खण्डहर के जीवन काल में आरम्भ से अन्त तक यहाँ केवल सिन्धु संस्कृति के लोग ही आबाद रहे। डा० ह्वीलर के अनुसार प्रौढ़ सिन्धु संस्कृति, हड़प्पा, मोहेंन-जो-दड़ो और लोथल, में ईसा पूर्व 2500 के लगभग एक साथ ही पहुँची थी। इस आधार पर हम लोथल का कालमान, सिन्धु संस्कृतिके सदृश, ई० पू० 2500-1500 में कर सकते हैं। इस तिथि के सम्बन्ध में केदारनाथ शास्त्री का विचार है "यदि हम डाक्टर ह्वीलर के काल निर्णय को मान्यता दें तो इसका यह तात्पर्य होगा कि प्रौढ़ सिन्धु संस्कृति पूर्वोक्त तीनों स्थानों, अर्थात् हड़प्पा, मोहेंन-जो-दड़ो और लोथल, में ईसा पूर्व 2500 के लगभग एक साथ ही पहुँची थी। ऐतिहासिक

दृष्टि से ऐसा निष्कर्ष निकालना अत्यन्त दोषग्रस्त होगा । इसमें सन्देह नहीं कि सिन्धु संस्कृति के प्रभाव-स्थान हड़प्पा और मोहेंन-जो-दड़ो इस संस्कृति के दो बड़े केन्द्र थे जहाँ से धीरे-धीरे फैलती हुई यह संस्कृति सिन्धु के काठे तथा आस-पास के समस्त क्षेत्र पर छा गई······इसमें सन्देह नहीं कि लोथल, रंगपुर और रोपड़ के खंडहरों में सिन्धु संस्कृति के लक्षण अवश्य मिले हैं, परन्तु यह भी निर्विवाद है कि इस संस्कृति का जो रूप यहाँ प्रकट हुआ है वह इसके अपकर्ष काल का है। यह सत्य है कि लोथल का यह सांस्कृतिक रूप रंगपुर और रोपड़ के रूप में उन्नत है, परन्तु यह रूप हड़प्पा और मोहेंन-जो-दड़ो में उत्खात इस संस्कृति के प्रौढ़ रूप के समकक्ष और समकालीन नहीं हो सकता······।''

लोथल की संस्कृति को हम तीन प्रमुख भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) पूर्व-प्राकार काल (ई० पू० 2500)
(2) प्राकार काल (ई० पू० 2000)
(3) प्रौढ़ लोथल काल (ई० पू० 1500) और उसका अन्त

इस प्राकार काल के सम्बन्ध में केदारनाथ शास्त्री का मत है कि ईसा पूर्व 2000 के लगभग लोथल* के स्थान पर बाढ़काण्ड से बचने अथवा शत्रुओं के डर से एक प्राकार बनाया गया। इस प्राकार-काल से पहले एक लम्बा प्राक्-प्राकार काल का युग था जो पाँच सौ वर्ष के लगभग लम्बा था।

नगर-योजना—यहाँ पर उत्खनन से कुछ छोटे-छोटे कस्बों के अवशेष (लगभग दो मील के क्षेत्र में) उपलब्ध हुए हैं जिनके मध्य में रक्षात्मक टीले भी निर्मित किये गये थे। इन कस्बों के उत्तर-पश्चिमी कोनों पर सिमेंट्री के अवशेष तथा एक विचित्र लम्बा ईंट का बना हुआ घेरा प्राप्त हुआ है। एस० आर० राव तथा अन्य उत्खाताओं ने इस ईंट के बने हुए घेरे को डाक-यार्ड (Dock yard) के नाम से सम्बोधित किया है। ऐसा उदाहरण अन्यत्र अप्राप्य है। डा० ह्वीलर का मत है कि—

"Lothal exhibits the characteristic features of the twin matropolis and something new in addition.

डा० संकालिया अपनी पुस्तक में लिखा है —

'The area is so flat that no one can imagine that there is a mound which harbours the debris up to a depth of 22 ft. Superficially it looks like a small mole on a large body. Within this debris are enshrined the remains of a town which, according to the latest interpretation of the building levels signs of destruction by flood and other material data, having four sub phases and dated between 2500 B. C.—1500 B. C. is regarded as the manifestation of mature Harappan civilization, while decadence characterizes period II (1500-1000 B. C.).''

टीले में छिपे हुए कस्बों के अवशेष के आधार पर उत्खाताओं ने अनुमान लगाया है कि ये आकार में दुगुने लम्बे थे, जैसा कि वर्तमान टीले से प्रतिध्वनित होता है।

---

*Lothal is the site near the village Saragwala in Dholka-Taluka of Ahamedabad district in Saurashtra. A conjecture has been hazarded that anciently the site might have been on the confluence of rivers Bhogava and Sabarmati, which is now removed to a distance of nearly two miles to the South-West of Lothal.

उत्खनन से उपलब्ध हुए अवशेषों के आधार पर यह स्पष्ट विदित होता है कि ये कस्बे प्रमुखतया 6 ब्लाकों में बँटे हुए थे। विभिन्न ऊँचाई (के प्लेट फार्मों पर ये कस्बे निर्मित किये गये थे। अभी तक, उत्खनन से चार सड़कें दो उत्तर से दक्षिण और अन्य दो पूर्व से पश्चिम), जिसके दोनों और गलियाँ बनी हुई थीं, उपलब्ध हुई हैं। सड़क के एक ओर 12 गृहों की पंक्ति बनी हुई थी दूसरी ओर (अन्य दूसरी सड़क के) छोटे-छोटे मकान बने हुए थे। प्रत्येक मकान में दो या तीन कमरे विभिन्न आकार-प्रकार (12 फीट × 9 फिट, 8 फिट × 6 फिट) के बने हुए थे। उत्खाताओं ने भवनों की क्षुद्राकृति को देखकर यह अनुमान लगाया है कि संभवतः इनका उपयोग दुकानों के रूप में किया जाता था। कुछ भवन विशाल आकृति के भी उपलब्ध हुए हैं जिनकी परिमाप 72 फीट × 42 फिट तक है। कुछ भवनों के अग्रभाग में बरामदा तथा कुछ अन्य के मध्य में आँगन, चारों ओर कमरों से युक्त, बने हुए थे। कलाकारों के गृह (यथा ताम्र-स्मिथ और मनके बनाने वालों के) आकार में छोटे और कच्ची ईंटों के बने हुए थे। हड़प्पा के भवनों के सदृश पकायी हुई ईंटों और बिचुमेन (Bitumen) के लेप का उपयोग किया गया था। सम्भवतः इन उपकरणों का उपयोग पानी के आदान-प्रदान होने वाले स्थानों पर किया जाता था। हड़प्पा के स्नानागार तथा अन्य जल प्रवाहक स्थानों पर इसका उपयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है।

सैन्धव संस्कृति की भाँति यहाँ पर भी सफाई का सर्वोत्तम प्रबन्ध था। स्वच्छता हेतु नालियों की बहुत ही समुचित व्यवस्था थी। ये सभी नालियाँ (पब्लिक और आन्तरिक नालियाँ) आकर मुख्य सड़क की नालियों में मिलती थीं और वे बहती हुई गंदे नालों में आकर मिल जाती थीं। स्नानागार बिचुमेन के लेप से युक्त थे और शौचालय के पीछे सोक पिट बने होते थे जिससे किसी प्रकार की गंदगी न प्रसरित हो सके। नालियों के पानी के तीव्र बहाव को कम करने के लिए जगह-जगह पर गड्ढे बने होते थे और उनमें कपड़ों के बड़े-बड़े सोख्ते रख दिये जाते थे जिससे कि वे पानी को सोख सकें। सफाई का इतना सुन्दर प्रबन्ध और नालियों की इतनी समुचित व्यवस्था, सैन्धव संस्कृति को छोड़कर विश्व की किसी अन्य प्राचीन सभ्यताओं में नहीं मिलती। यहाँ पर उत्खनन से दक्षिणी ब्लाक में एक वृहत् आकार का भवन उपलब्ध हुआ है। यह भवन एक लम्बे ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है। इसके अन्दर कुएँ भी बने हुए हैं। उत्खाताओं का अनुमान है कि यह भवन शायद पब्लिक गृह था अथवा किसी अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति से सम्बन्धित था।

नालियों की ईंटें बहुत ही कलाकारी पूर्ण ढंग से जोड़ी गयी थीं। ह्वीलर का अनुमान है—

"The Presence of 'Socket holes' indicates that probably there was specific 'door-like' provision in the drain walls, for clearance of drains."

अन्नागार—उत्खनन से एक ढाँचा 165 फिट × 145 फिट का उपलब्ध हुआ है। यह 12 ब्लाकों की चार पंक्तियों से सम्बन्धित है। उत्खाता ने इसे किल्न (Kiln) और डा० ह्वीलर ने इसे अन्नागार माना है। यस० आर० राव ने 70 मुद्राओं का उल्लेख किया है जो उत्खनन के दौरान इन्हीं ढाँचों के मध्य से उपलब्ध हुई थी।

डाक-यार्ड—प्रथम काल की आबादी के द्वीतीय चरण में एक विस्तृत ईंटों की पंक्तिमों से घिरा हुआ एक घेरा, उत्खनन से उपलब्ध हुआ है। यह घेरा कस्बे से पूर्व की ओर तथा कच्ची ईंटों और मिट्टी से निर्मित रक्षात्मक टीले के निकट स्थित है। इसका उत्तर से दक्षिण तक का परिमाप 710 फीट और 120 फीट पूर्व से पश्चिम का है। यह बेक्ड ईंटों (baked-bricks) का बना हुआ है। इसकी पूर्ण ऊँचाई 14 फीट है। इसको देखकर उत्खाताओं ने यह अनुमान लगाया है कि शायद यह अपने निर्माणकाल में अधिक ऊँचा रहा होगा। इसकी दीवाल में पूर्वी ओर 23 फिट चौड़ा खुला हुआ भाग है। इसी प्रकार का छोटा खुलाव दक्षिण की ओर भी है। डा० ह्वीलर के अनुसार—

---

*"It has been suggested by its excavator Sri S. R. Rao (in 1954) on the basis of its antiquities as 'miniature-Harappa' and by other scholars as "miniature-Mohen Jodaro."

"There is a large opening about 23 ft. wide, in the wall on the eastern side. This is believed to be the 'inlet channel', where as on the south there is a smallar opening called, 'Spill channel' which may have been for regulating the out flow of the water by the insertion of a wooden door in the grooves provided at the mouth"

इस ढांचे के अन्दर 5 पत्थर के रिंग्स (rings) भी प्राप्त हुए हैं। यस० आर० राव महोदय का अनुमान है कि—

"It's largeness, archor stones and salty-soil within the structure suggests that it was a dock-yard."

डा० ह्वीलर और संकालिया ने अपनी पुस्तक में लिखा—

"The discovery of Dock-yard now leaves no rooms for doubt that Harappan established maritime contact with other contemporary countries. Probably Harappan objects unearthed at Mesopotamia may have been exported from the Lothal."

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि लोथल का एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व था। इसका सम्पर्क न केवल हड़प्पा संस्कृति से बल्कि अन्य देशों की सभ्यताओं से भी था।

कुम्भ कला

यहाँ से उत्खात मिट्टी के बर्तन (कुम्भकला) कई आकार और मान के हैं। यह सभी मिट्टी के बर्तन सैन्धवकालीन मृद्भाण्डों के सदृश सुन्दर, विधिवत् तैयार किये गये और चित्रण से युक्त हैं। उपलब्ध हुए मृद्भाण्ड निम्न हैं—बीकर, गोबलेट, आधारित तश्तरियाँ, घड़े, लैम्प और ट्रे आदि। कुछ मृद्भाण्ड गहरे लाल रंग के या बफ वेर के सदृश हैं। ठीकरों पर स्याही से चित्रित अभिप्रायों में समानान्तर पट्टियाँ, रेखापूर्ण अण्डार्ध, शक्कर पारा, लहरिया आदि वर्णनीय है। डा० ह्वीलर ने लिखा है—

"Lothal is an exact replica of a true Harappan town. The town folk enjoyed the same prosperity as witnessed at Mohenjodaro for instance, fine, well made, sturdy pottery, recalling in shape, designs, fabric and even in the levigation of clay, the now famous Indus pottery. But in addition to the beakers, goblets, troughs, dishes on stand, knobbed vessels with flaring sides, perfoarated jars and lamps in thick red or buff ware, there is a black and red or cream ware which is throughout contemporary with the usual ware,"

लोथल की सभ्यता के द्वितीय काल में कुछ नये ढंग के काले और लाल या क्रीम मृद्भाण्डों का प्रचलन शुरू हो जाता है, परन्तु ये मृद्भाण्ड विभिन्न आकार और मान के हैं। इनके बनावट की शैली भी सैंधवकालीन मृद्भाण्डों की अपेक्षा कुछ नवीन और विचित्र ढंग की है। लोथल के द्वितीय काल में निर्मित हुए पात्रों की संख्या निम्न है: कटोरे (with blunt carinated shoulder) और साधारण थालियाँ (without Carination on a squattish stand) गोबलेट, बीकर और घड़ों का प्रचलन बन्द हो जाता है। कुछ नये चित्रण और टेक्नीक का आश्रय लिया जाता है। कुछ नयी डिज़ाइनें जैसे बतख, बारासिंघा और सर्पों की आकृतियाँ निर्मित की जाती हैं। डा० संकालिया ने इन नये पात्रों के चित्रण बनावट और डिजाइनों तथा कुछ अन्य नये पात्रों के पुनर्प्रचलन पर अपना मत व्यक्त किया है कि

"If these and others also occur in period I, then Lothal should be regarded as not mature or true Harappan but as Wheeler calls it a Sub-Indus variety."

यह काले व लाल मृद्‌भाण्डों की सभ्यता हड़प्पा और सेन्ट्रल इण्डियन ताम्राश्मीय सभ्यता के मध्य एक लिंक स्थापित करने का कार्य करती है। इससे यह भी विदित होता है कि सैन्धव संस्कृति की पतनावस्था के काल में मध्य भारत के ताम्राश्मीय युग के काले और लाल कुम्भकला के लोग यहाँ आकर बस गये थे। सैन्धव संस्कृति का प्रभाव इन पर अवश्य पड़ा और कुछ काल तक अपनी प्राच्य सभ्यता के कारण फलते-फूलते रहे। इस संस्कृति के मृदभाण्ड जो कि काल 2 के निम्नस्तर पर मिले हैं वे सैन्धव पात्रों से अवश्यमेव प्रभावित थे पर ऊपरी स्तर पर उपलब्ध पात्र कुछ विशेष नये आकारों-प्रकारों एवं डिजाइनों से युक्त थे। ये पात्र इनकी निजी कला के परिचायक प्रतीत होते हैं।

मुद्राएँ—सैन्धव सभ्यता के सदृश यहाँ पर बहुसंख्यक मात्रा में मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं। रुपड़ से भी इसी प्रकार की एक मुद्रा प्राप्त हुई है। एक मुद्रा पर काल्पनिक एक शृंग पशु उत्कीर्ण है। पशु के कंधों पर पान पत्ती के आकार का आवरण वस्त्र है और गले के नीचे बलि-वेदि, जो सिन्धु मुद्राओं पर इस पशु के आगे प्रायः देखी जाती है, पर सभी विशिष्टताएँ हड़प्पा कालीन मुद्राओं के सदृश नहीं हैं।

अन्य उपलब्ध उपकरण—लोथल के प्राप्त शरीर के भूषणों में नाक के दमकड़े, जड़ायी या मीनाकारी करने के टुकड़े, खड़िया पत्थर का फूल जिसके अब केवल दो दल ही शेष हैं। भूषणों में भी नानाविध वैचित्र्य प्रतिलक्षित होता है। डा० संकालिया ने लिखा है—

"Ornaments of various types and materials like shell, ivory, Steatite, faience, terracotta, semi-precious stones, copper and gold-ornaments, beautifully polished weights, gamesmen, figurines in terracotta and copper, once again testify to the artistic skill of the Indus-Saurashtra craftsmen. There is, for instance, a small copper dog : even though now encrusted, it has a beautiful expression. And the golden necklace-in 500,000 tiny gold beads with spacers."

इसके अतिरिक्त यहाँ पर सैन्धव संस्कृति के सदृश आमोद-प्रमोद के उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं यथा गेम्समेन बैल, इवोरी का लगभग 7 इञ्च लम्बा मापने वाला सोंटा, गेम बोर्ड (ur. के राजसी कब्रों में इस प्रकार का गेम मिला था) और मुड़े हुये ताम्र या कांस्य ड्रिल, योनि आदि। साथ ही यहाँ पर घोड़े के या घोड़े के सदृश्य अन्य जानवरों के (Terra Cotta Figures) मिले हैं। कुछ विद्वानों ने इस आकृति को घोड़े का न बतलाकर जंगली गधे की माना है और अपने प्रमाण में यह कहा है कि इसी प्रकार की आकृतियाँ सौराष्ट्र के उत्तर पश्चिम कच के लिटिल रन (Little Rann of Kutch) में भी उपलब्ध हुई हैं।

डा० संकलिया के अनुसार—

"If it was found from the mature Harappan deposits of period I (as suggested by Rao), these all the arguments regarding the authorship of the civilization will have to be revised, unless, of course, the animal is not a horse but an onigaz-wild ass."

सन् (1959-1960) के उत्खनन पर यहाँ पर पुनः द्वितीय काल में घोड़ों के तीन टेर्राकोट्टा की आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं।

शव प्रथा (Burial System)—सन् 1960 के उत्खनन से यहाँ पर 17 कब्रें मिली हैं। स्तरविन्यासात्मक ढंग के आधार पर ये कब्रें प्रथम युग के अन्तिम चरण तथा पूर्णतया द्वितीय युग से सम्बन्धित हैं। शव दफनाने की प्रथा पूर्णतया साधारण थी। एक लम्बा गड्ढा खोदकर उसी में मृतक शरीर को दफना दिया जाता था। आधुनिक युग की

भाँति मृतक का शीर्ष भाग उत्तर की ओर होता था और कुछ अन्य कब्रों में शव की आकृति पूर्व-पश्चिम दिशा में भी पड़ी हुई पायी गयी है। प्रथम युग के तृतीय चरण की एक कब्र कच्ची ईंटों से घेर दी गयी थी। इस कब्र के बारें में यस० आर० राव का मत है—

"That shrouds, Coffins or built in chest like contrivances were probably in vogue."

इसी प्रकार के अवशेष डा० ह्वीलर को सन् 1946 में सिमेट्री आर० 37 के कब्र नं० 5 में मिले थे। वूडेन-काफिन के चिह्न (Traces of wooden Coffin) और रीड श्रावुड (Reed Shroud) से घिरा हुआ मृतक शरीर।

सन् 1955-56 के उत्खनन के मृतक शरीर के साथ मिट्टी के बर्तन मिले थे। इन बर्तनों के अन्दर हड्डियों के टुकड़े, कुछ मृद्‌भाण्ड और कार्नेलियन के मनके रखे हुए थे। एस० आर० राव का सुझाव है :—

"It is difficult to say whether these are examples of urn-burials and if so of children, who were very often buried in pots right in the houses." प्राय: सभी कब्रों में एक ही व्यक्ति के शरीर का ढाँचा मिला है लेकिन प्रथम युग के तृतीय चरण की तीन कब्रों में दो मृतक शरीरों के ढाँचे बगल-बगल में रखे उपलब्ध हुये हैं। इन कब्रों के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये कब्रें हड़प्पा कालीन सती-प्रथा की सूचक है। लेकिन श्री राव के अनुसार :—

"It is not the case of Sati Practices these three 'twin burials' were devoid of any grave goods, because of shortage of space, but single graves were prouded with a number of Pots. Anthropological studies reveal that both the bodies are male."

तिथि—यहाँ पर उपलब्ध हुए उपकरणों तथा स्तर विन्यास के आधार पर इस स्थान की सभ्यता को प्रमुखतया दो कालों में बाँटा जा सकता है। प्रथम काल को चार चरणों में विभाजित किया गया है। इस काल की तिथि 2500-1500 बी० सी० निश्चित की गयी है। यह काल प्रौढ़ हड़प्पा संस्कृति का द्योतक है। द्वितीय काल की तिथि 1500-1400 बी० सी० निर्धारित की गयी है। यह काल हड़प्पा का अवनति काल था। कार्बन 14 तैथिक विधि के आधार पर यह विदित होता है कि लोथल से हड़प्पा संस्कृति का अन्त लगभग 1700 बी० सी० में हुआ था।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि लोथल का खण्डहर सिन्धु-सभ्यता के काल निर्णय के लिए एक मानदण्ड है।

अध्याय | 6

ब्रह्मगिरि

(BRAHMAGIRI)

यह दक्षिण भारत के मैसूर राज्य में स्थित है। यहाँ पर 1977 ई० में सर मार्टीमर ह्वीलर ने उत्खनन कराया था। यह कार्य उन्होंने तिथि हीन लौह युगीन महाश्मिक सीमीट्री के क्षेत्र में किया था जो सभ्यता के मध्य में दबी हुई पड़ी थी। यहाँ पर उत्खनन से तीन विभिन्न युगों की सभ्यताएँ प्रकाश में आयीं। सबसे नीचे के स्तर में प्रस्तर युगीन
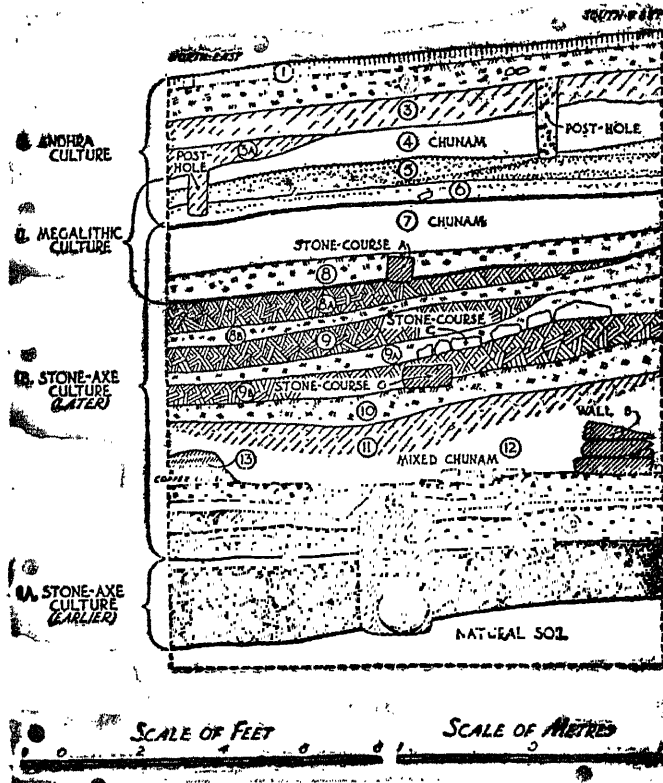
चित्र 2❀—Section from Brahmagiri, Mysore State, India, showing three cultural phases with overlaps.

❀ ब्रह्मगिरि के स्तर विन्यास का यह चित्र डा० ह्वीलर की पुस्तक से लिया गया है।

(Stone AxeCulture) सभ्यता, मध्य की महाश्म सभ्यता (Megalithic Culture) स्थानीय महाश्मिक कब्रें (Local megalithic tombs) और सबसे ऊपर के स्तर में आन्ध्र युगीन सभ्यता (Andhra Culture) के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। डा० मार्टीमर ह्वीलर ने आन्ध्र सभ्यता की तिथि प्रथम शताब्दी ई० निर्धारित की है। प्रस्तर सभ्यता से उपलब्ध उपकरणों की विभिन्नताओं के आधार पर डा० ह्वीलर ने इसे दो भागों में विभाजित किया है 1—प्रारम्भिक प्रस्तर कुल्हाड़ी सभ्यता (Stone Axe Culture earlier) 2—पश्चात् कालीन प्रस्तर-कुल्हाड़ी सभ्यता (Stone Axe Culture later)। ये समस्त प्रस्तर के उपकरण अपनी कलाकृतिक विशेषताओं से युक्त हैं।
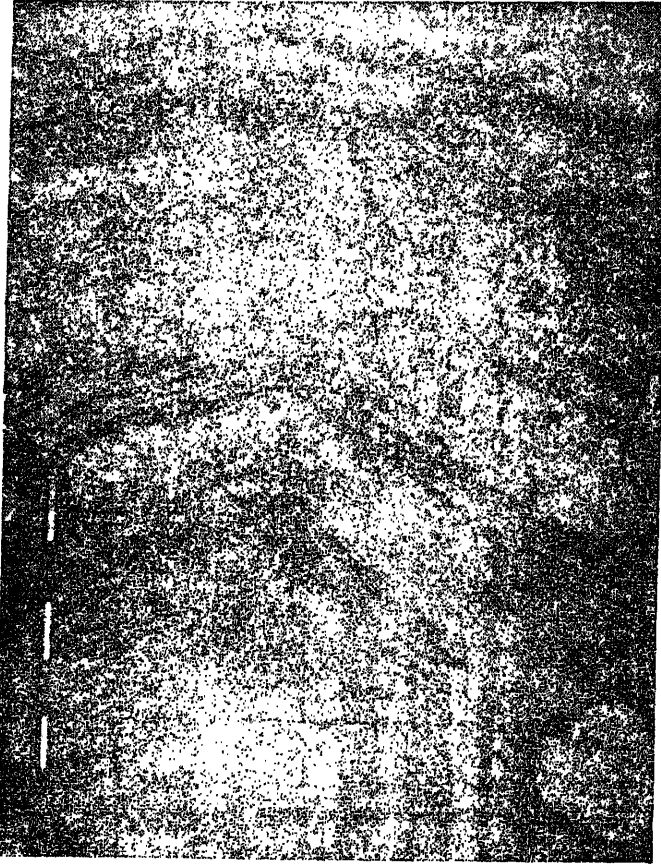
चित्र 3—Stratification at Brahmagiri, Mysore State, India
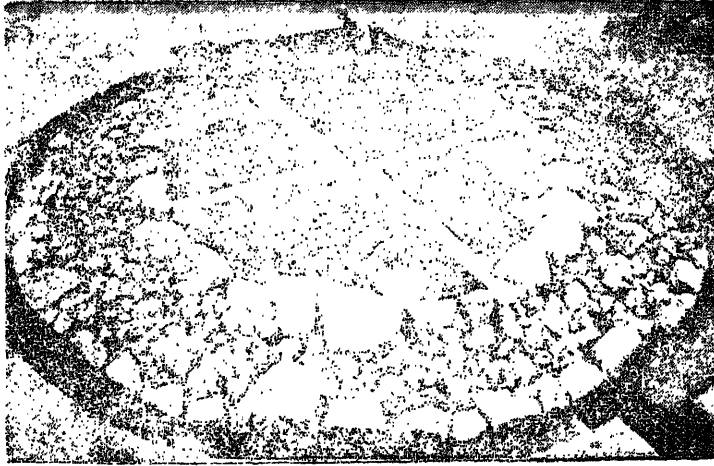
चित्र 4—Excavation of a burial-pit (first or second century B. C.) at Brahmagiri, Mysore State, India, showing the quadrant method

19 स्तरों के अन्दर उपर्युक्त तीनों युगों की सभ्यताएँ दबी हुई पड़ी थीं। प्रस्तर-कुल्हाड़ी सभ्यता में स्तर 6 से लेकर 19 तक क्रमशः 26, 63, 150, 36, 89, 76, 196, 46, 33, 23, 26, 48, 15, 198, 7, 45, 25 और 32 उपकरण उपलब्ध हुए हैं। इनकी विस्तृत सूची डा० ह्वीलर की पुस्तक आर्कियोलाजी फ्राम दि अर्थ में बनी हुई है। इसी प्रकार से महाश्म सभ्यता में स्तर 4 से लेकर 8 तक क्रमशः 36, 68, 115, 407 और 199 तथा आंध्र सभ्यता में स्तर 1 से लेकर 6 तक क्रमशः 52 (और एक पीला-चित्रित उपकरण); 384 (और 10 पीले चित्रित उपकरण), 480 (और 68 पीले चित्रित और 1 रुलेट युक्त मृद्भाण्ड) 67,269 (और 51 पीले चित्रित भाण्ड,) 219 (और 10 पीले चित्रित भाण्ड) और 405 (और 7 पीले चित्रित मृदभाण्ड) उपकरण उपलब्ध हुए हैं। महाश्म सभ्यता❀ के अन्तिम स्तर पर पर विभिन्नात्मक प्रस्तर-कुल्हाड़ी प्रकार के भाण्डों से युक्त एक कब्रिस्तान मिला है, जो दोनों सभ्यताओं के बीच साहचर्य स्थापित करता है। इसी प्रकार से आंध्र सभ्यता के अन्तिम स्तर पर 7 रुलेट युक्त कुम्भकला के अवशेष प्राप्त हुए हैं स्तर विन्यास के आधार पर यह प्रतीत होता है कि ये तीनों सभ्यताएँ एक दूसरे के साहचर्य में फल-फूल रही थीं। बीच-बीच में विघटित हुए व्यवधान इस बात के सूचक हैं कि तत्कालीन सभ्यता कुछ समय के लिए विनष्टप्राय हो गयी थी। कुछ समय के बाद में फिर यह दूसरी सभ्यता के लोगों के द्वारा निवसित हुई।

❀"The Brahmagiri cists were marked by the circular-entrance opening or 'Port-hole' which is present on many other Indian examples and on comparable tombs in Western Asia, Northern Africa, and Europe (including Britain) and may be a significant common factor." (Dr. Wheeler, Arch, from the Earth, P. 144-145).

नोट—ब्रह्मगिरि के कब्रिस्तान या शव-गर्त का उत्खनन (quadrant) विधि से किया गया था। डा० ह्वीलर ने इसकी तिथि प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० पू० निश्चित की है। रुलेट युक्त मृत्पात्रादि की तिथि प्रथम शती ई० निश्चित की गयी है। महाश्म सभ्यता का अन्त भी लगभग इसी समय में हुआ था।

तीनों सभ्यताओं के मृद्‌माण्डों के बनाने की टेकनिक और फेबरिक (Technique and fabric) एक दूसरे से इतनी अधिक विभिन्नात्मक है कि उनका वर्गीकरण करना (Classification) पूर्णरूपेण दुष्कर है। प्रस्तर-कुल्हाड़ी युगीन सभ्यता के मृद्‌माण्ड हाथ से बनाये गये अत्यन्त भद्दी आकृति के हैं इसके विपरीत महाश्मयुगीन सभ्यता के मृद्‌माण्ड पालिश-युक्त, सुन्दर काले और भूरे रंग वाले और कुछ मुड़ी हुई आकृति के हैं। आंध्रयुगीन सभ्यता के मृद्‌माण्डों में कला का प्रचुर विकास पाया जाता है। वे चक्र पर विधिवत बनाये गये हैं और उन्हें विभिन्न प्रकार के चित्रण तथा अलंकारों से सजाया गया है।

मृद्‌माण्डों को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्रह्मगिरि से कुम्भकला का विकास एक क्रमिक गति से हुआ था। प्रथय युग के मृत्पात्र भद्दे, द्वितीय युग के पालिशयुक्त तथा तृतीय युग के कुम्भकला के चरमोत्कर्ष युग से सूचक हैं। कुम्भकला के क्रमिक विकास का ऐसा उन्नत उदाहरण अन्यत्र दुष्प्राप्य है। डा० ह्वीलर ने लिखा है—

"Details of this specific Mysore example do not concern us, it will suffice to observe that the overlap thus demonstrated between the Megalithic culture and the overlyiung first-century culture proved that the Megalithic tombs were there in use until the first century, and so provided the first firm date for this very abundant category cf south Indian structures."

तैथिकी अथवा काल-मान के दृष्टिकोण से यह स्थान बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है।

———

अध्याय 7

अरिकमेडु

सन् 1940-41 में (नगर से 2 मील दक्षिण) एक फ्रांसीसी antiquary ने यहाँ पर उत्खनन कराया था। यहाँ पर भारतीय सभ्यता के द्योतक बहुत से उपकरण मिले हैं जो आज भी पांडिचेरी की एक पब्लिक लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। उपलब्ध हुए पदार्थों में भारतीय आकार-प्रकार के मृद्भाण्ड, मनके, आदि हैं। साथ ही यहाँ पर अम्फोरे के पदार्थ (many sherds of amphorae), ग्लास-वेर (fragments of glassware), लैम्प का एक हिस्सा (Part of a lamp) और एक अन्ट्रिम्मड क्रिस्टल (untrimmed Crystal intaglio representing Cupid with an eagle) इन्टगलिओ आदि-2-भी मिले हैं। ये (उपर्युक्त) उपकरण मेडिटेरेनीन (Mediterranean) उत्पत्ति पदार्थ के साथ में मिले थे। डा० ह्वीलर ने एक ऐसे उपकरण का उल्लेख किया है जिसके ऊपर अगस्टस का चित्र बना हुआ था देखिए (Fragments of Roman amphorae) डा० ह्वीलर, आर्कि० फ्राम दि अर्थ, पृ० 142-144, प्लेट 16 और 16) इसके अतिरिक्त यहाँ पर लाल चमकीली कुम्भकला (red.glazed ware) के बहुत से पात्र उपलब्ध हुए हैं। इसी प्रकार के मृद्भाण्ड अरिटियम (Arretium) और अन्य इटालियन केन्द्रोंपर (स० 45 ई० पू० के लगभग) बनाये जाते थे अर्थात् अरिकमेडु के मृद्भाण्ड अरिटियम और इटालियम के समतुल्य है। इन सभी मृद्भाण्डों का विधिवत परीक्षण डा० ह्वीलर ने पांडिचेरी की एक पब्लिक लाइब्रेरी में किया था और तत्पश्चात् यह घोषित किया कि अरिकमेडु के अधिकांश उपकरण भारतीय सभ्यता के द्योतक हैं। जिस समय ये इस क्षेत्र में उत्खनन करा रहे थे (सन् 1945 में) उस समय यह स्थान प्राच्य दक्षिणी भारतीय सभ्यता के अन्तर्गत परिगणित किया जाने लगा था। अरिकमेडु में उपलब्ध हुए उपकरण विभिन्न देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध तथा तिथि निर्धारण में बहुत ही सहायक सिद्ध हुए हैं। यहाँ पर उत्खनन से प्रथम शती ई० के रुलेट युक्त मृद्भाण्ड भी मिले हैं। पात्रों में थालियाँ (dishes) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार के मृद्भाड अमरावती, अर्‌रटीन'मेडिटर्‌रनीन चन्द्रवल्ली, ब्रह्मगिरि, कोल्हापुर, कोण्डपुर, मास्की, शिशुपालगढ़ तिबेरियस (Tiberius) और आन्ध्रराज्यों में पाये गये हैं (रुलेट युक्त मृत्पात्रादि)। डा० ह्वीलर ने लिखा है।

"Amongst the distinctive products of Arikamedu was a type of dish decorated on the internal base with concentric rings of a rouletted pattern otherwise foreign to Indian ceramic but familiar on certain classical wares including Arretine ware itself. Some of these rouletted dishes were doubtless imports from the Mediterranean, others were local Indian imitations. A search of museums showed that dishes of this kind had been fouud in Southern India at a number of places separated by scme hundreds of miles one another" (See Arch. from the earth, P. 144).

नोट—सर मार्टीमर ह्वीलर ने मद्रास के संग्रहालय में रोम की मृतकुंडिकों के टुकड़ों को लेकर पांडिचेरी के अरिकमेडु नामक स्थान में उत्खनन कार्य किया और उस व्यापारिक केन्द्र के इतिहास और उसके रोम के साथ सम्पर्क पर पूर्णतया प्रकाश डाला। इस पर पहिले पुरातत्वविदों का ध्यान नहीं गया था। यद्यपि रोम के साथ भारतीय व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्पर्क का उल्लेख दक्षिण के तामिल और तत्कालीन पाश्चात्य यूनानी और रोमन साहित्य में मिलता है और भारत में रोम सम्राटों के बहुत से सिक्के भी मिले हैं (दे० डा० बैजनाथ पुरी, पुरातत्व विज्ञान, पृ० 36)।

चित्र 5—Arikamedu : fragments of Roman amphorae
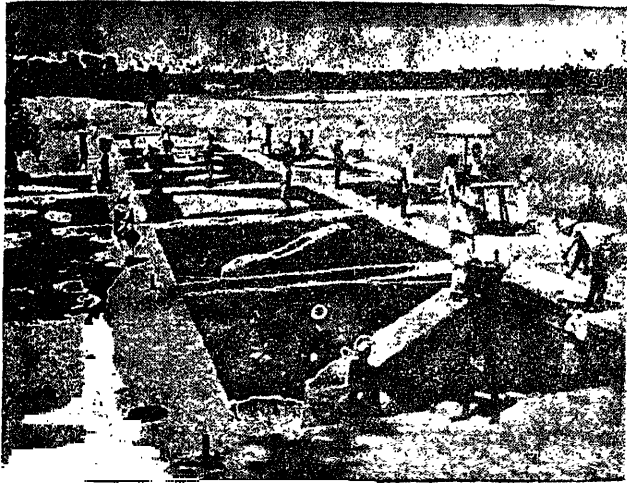
चित्र 6—Discipline : excavation at Arikamedu, South India, 1945

अध्याय | 8

राना घुंडई

राना घुंडई की संस्कृति, ब्रिगेडियर रास द्वारा छोटे से किए गये उत्खनन से मिलती है जिन्होंने इस टीले की विभिन्न संस्कृतियों के क्रम को निर्धारित करने को चेष्टा की है। इनकी निश्चित तिथि अज्ञात है, केवल सापेक्ष तिथि ही हम ज्ञात कर सकते हैं। उत्खनन से यहाँ की संस्कृति निम्न पाँच स्तरों में दबी हुई मिली :

स्तर		स्थान	काल
1—राना घुंडई		,,	=प्रथम
2—	,,	,,	=द्वितीय
3—	,,	,,	=तृतीय अ. तृतीय ब. तृतीय स.
4—	,,	,,	=चतुर्थ
5—	,,	,,	=पंचम अ. पंचम ब. पंचम स.

इस प्रकार की संस्कृति केवल यहीं पर ही मिली है इस संस्कृति के अन्तर्गत भवनों से सम्बन्धित कोई अवशेष नहीं मिले हैं अतः यहाँ की नगर योजना पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता है। यहाँ पर उत्खनन से राख परतों पर मिली है। इसके आधार पर विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि संभवतः अर्द्ध सभ्य लोग यहाँ पर निवास करते थे। पहले काल की आबादी में उपलब्ध हुए पात्र हाथ से बनाये गये प्रतीत होते हैं। मृद्भाण्ड विभिन्न प्रकार की चित्रकारियों से युक्त है। जानवरों में बैल, भेड़, गदहा और घोड़ा की आकृतियाँ मिली हैं। घोड़ा का मिलना महत्वपूर्ण भी है। इससे यह सिद्ध होता है कि हड़प्पा संस्कृति से पूर्व बलूचिस्तान के लोग भी घोड़ों से परिचित थे। साथ ही यहाँ पर कुछ पत्थर के छोटे-छोटे औजार भी मिले हैं।

द्वितीय युग के बर्तन चाक पर बनाये गये और उन पर बहुविधि चित्रण भी किया गया है। बैल और बकरियों के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

तृतीय युग में यह स्थान निर्जन रहा। बाद में कुछ लोग यहाँ पर आकर निवास करने लगे और धीरे-धीरे इनकी संस्कृति का विकास हुआ। उपलब्ध अवशेषों के प्रमाण पर इनकी संस्कृति हम तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं। तृतीय अ संस्कृति में हड़प्पा कालीन अवशेष नहीं मिले हैं परन्तु ब और स में हड़प्पा कालीन संस्कृति के अवशेष प्रचुरता से मिले हैं। बर्तनों का चित्रण काले और लाल रंगों से किया गया है। सुरजंगल, पेरिअनो घुंडई (Periano Ghundai), नाल और मुगल घुंडई आदि-आदि स्थानों में इस प्रकार की संस्कृति के अवशेष मिले हैं। कुछ अवशेष कुल्ली संस्कृति समतुल्य भी प्रतीत होते हैं।

मृद्भाण्ड, डाट, जंजीर की डिजाइन, टेढ़ी लकीर, और नाँद जैसे अलंकरणों से सजाये गये हैं। इसी तरह के बर्तन हड़प्पा मेरिअनो घुंडई, कोटदिजि और अभरी में भी पाये गये हैं। इनके प्रचलित आकार घड़े (जिनका रिम बाहर की ओर झुका हुआ है) छोटे-छोटे कटोरे, गहरे नाँद, और आधारित तश्तरियाँ सभी स्तरों पर मिली है। तुलना करने से ऐसा लगता है कि इस तरह के बर्तन हड़प्पा सभ्यता से भिन्न स्तर के हैं। लेंस मिट्टी की चूड़ियाँ, मनके (Beads) अधिक उल्लेखनीय हैं। ताँबे और काँसे के उपकरण कम मिले हैं।

अध्याय 9

कुम्भ कला

उत्तरी कृष्णमार्जित मृद्भाण्ड—पत्थर ताँबा और काँसा के बाद लौहयुग का आरम्भ ईसवी पूर्व की 12 वीं शताब्दी के लगभग से आरम्भ होता है। यद्यपि हिताइतों ने इसका प्रयोग लगभग 1900 ई० पू० से किया था। लोहे की खानों की बहुतायत जो मिश्र, नूविया, पूर्वी जार्डन सीरिया, फारस तथा यूरोप के बहुत से स्थानों में पाई जाती है—वे मनुष्य को इसी के औजार तथा अन्य प्रायोगिक वस्तुयें बनाने के लिये प्रेरित किया। ताँबे की भाँति इसका प्रयोग भी ताबीज इत्यादि बनाने के लिये हुआ, पर मनुष्य में किसी प्रकार की नवीन संस्कृति जागृति नहीं हुई। भारत में लोहे (अयस) का प्रयोग वैदिक काल से ही होता चला आ रहा है जिसका प्रमाण वैदिक साहित्य है।

उत्तरी, मध्य और उत्तर-पश्चिमी भारत के विभिन्न भागों में उत्तर कृष्णमार्जित मृद्भाण्ड सभ्यता के उपकरण उपलब्ध हुए हैं जो इस सभ्यता के विस्तार के सूचक हैं। उत्तर कृष्णमार्जित मृत्पात्रादि चक्र पर बने हैं। इनकी सतह बहुत चमकदार है और रंग भूरे से काला है। इनको रगड़ कर चमकाया जाता था। बाहरी भाग का लेप सफेद या लाल रहता था। ये मृत्पात्रादि साधारणतया पतले आकार के होते थे जिनका धरातलीय आकार अत्यन्त चमकीला और भूरे से काला होता था और स्पात सदृश गुणों से युक्त होते थे। सर्वप्रथम इस पात्र को चाक पर निर्मित किया जाता था तत्पश्चात् रगड़कर चमकीला बनाया जाता था और तब उस पर चमकीली मिट्टी का लेप लगाकर रेड्यूसिंग दशा में पकाया जाता था। इससे सदैव यह पात्र चमकीला ही बना रहता था।

प्राप्त मृत्पात्रादि का आकार एक छिछली तश्तरी या कटोरे के रूप में प्रतीत होता है। कभी-कभी ऊपर ढक्कन रखने के लिए उमड़े किनारों का भी स्थान बना रहता है। डा० ह्वीलर ने इन मृद्भाण्डों के आकार को चित्रित धूसर मृद्भाण्ड के आकारों से अधिक उच्चस्तर का माना है।

"The shapes are commonly bowls or convex-sided dishes, with a certain analogy—as indeed, has the high quality of the fabric to the P. G. Pottery."

डा० ह्वीलर पुनः कहते हैं :

"It may be suggested as an idle guess that the great popularity of the Ware was not altogether unconnected with its superficial resemblance to forged iron, which first appears in northern India shortly before N. B. P. Ware. Alternatively, it may reflect the liking of the persians for a high metallic polish, as represented very notably in some of their masonry."

संभवतः सर्वप्रथम इन मृद्भाण्डों के अवशेष गंगा की घाटी की खुदाई में उपलब्ध हुए हैं जो अपने आकार-ढंग में अनोखे हैं। यहाँ पर लौह उपकरणों के साथ ये मृद्भाण्ड उपलब्ध हुए हैं, जो अपनी संख्या में अधिकतम हैं। डा० ह्वीलर का अनुमान है कि ये सभी मृद्भाण्ड पर्शियन धातु पालिश के सदृश अत्यन्त ही चमकीले हैं। तक्षशिला (पंजाब, पश्चिमी पाकिस्तान) में भीड़ टीला के उत्खनन में 18 उत्तर कृष्णमार्जित मृत्पात्रादि उपलब्ध हुए हैं। यह नगर छठीं या

पंचम शती ई० पू० के प्राथमिक भाग में बसाया गया था। और 180 बी० सी० के लगभग नष्टप्राय हो गया था। भीड़ टीले के 16 मृत्पात्रादि 7 से 13 फीट की गहराई में उपलब्ध हुए हैं और दो 7 फीट से कुछ अधिक गहराई तथा अन्य दो 4 फीट 10 इञ्च और 6 फीट 2 इन्च की गहराई में उपलब्ध हुए हैं। डा० ह्वीलर ने इन मृद्‌माण्डों की संख्या 20 दी है। साथ ही तक्षशिला के सिरकप नामक स्थान पर धरातल से 18 फीट नीचे दो अन्य उत्तरकृष्णमार्जित मृद्‌भाण्ड उपलब्ध हुए हैं। डा० ह्वीलर ने इन मृद्‌भाण्डों को द्वितीय शताब्दी बी० सी० के उत्तरार्द्ध में माना है। इसी आधार पर ह्वीलर महोदय ने इस सभ्यता की तिथि 5 वीं शती से द्वितीय शताब्दी ई० पू० रखा है। इस प्रकार उड़ीसा के शिशुपाल-गढ़ नामक स्थान पर 3 उत्तरकृष्णमार्जित मृद्‌भाण्ड के अवशेष रूलेटेड (Rouletted) मृद्‌भाण्ड के ऊपरी सतह पर उपलब्ध हुए हैं जो सामान्यतः प्रथम शताब्दि ए० डी० के प्रारम्भ से पहले के नहीं प्रतीत होते हैं। पेशावर के निकट चरसड्डा (उत्तर-पश्चिम) नामक स्थान पर सन् 1958 के उत्खनन में दर्जनों मृद्‌भाण्ड इस आकार के प्राप्त हुए हैं। स्वात के उदेग्राम नामक स्थान पर भी इस सभ्यता के अवशेष मिले हैं जिनको प्रोफेसर जी० तुक्की (Tucci) ने तृतीय शताब्दी बी० सी० का माना है। इस प्रकार से तक्षशिला में भी इस सभ्यता का विस्तार मौर्यों के गंगा से तक्षशिला पहुँचने अर्थात् 323 ई० पू० के बाद ही माना जा सकता है। ह्वीलर महोदय ने विशेषकर उत्तर पश्चिमी भारत में उपलब्ध हुए इन मृद्‌माण्डों की तिथि 320 से 150 ई० पू० निर्धारित की है। पुनः ह्वीलर महोदय की धारणा है कि संभवतः इस सभ्यता के विकास का प्राथमिक काल गंगा की तलहटी ही है। इसी प्रकार से गंगा घाटी के हस्तिनापुर नामक स्थल पर इस सभ्यता के लगभग 100 अवशेष, तृतीय युग (Period III) में उपलब्ध हुए हैं। इसी स्थल के चतुर्थ युग में द्वितीय शताब्दि ई० पू० के मथुरा के सिक्के मिले हैं, पर वहाँ पर इन सिक्कों के साथ उत्तर-कृष्णमार्जित मृद्‌माण्ड नहीं उपलब्ध हुए हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यह सभ्यता ऊपर उल्लिखित स्थान पर 6 से 2 शती ई० पू० तक फलती-फूलती रही और उसके पश्चात् यह सभ्यता अपने अस्तित्व को खो बैठी। उत्तरी भारत के अहिच्छत्र के अतिरिक्त मथुरा, कौशाम्बी, भटा, झूँसी (प्रयाग), मसाओ (गाजीपुर), अतरंजिखेड़ा (एटा), सारनाथ, राजघाट, पटना, राजगिरि, गिरअक (पटना), वानगढ़, (दिनाजपुर), कसरावध (इन्दौर), वैराट (जयपुर,) साँची (भोपाल), रुपर, त्रिपुरी, बबल और बक्सर में यह पाये गये थे।

अतः उपर्युक्त प्राप्त स्थानों से यह विदित होता है कि यह सभ्यता उत्तरी भारत, मध्यभारत और उत्तरपश्चिमी भार से लेकर दक्षिण में अमरावती के छोर तक फैली हुई थी।

हास्तिनापुर
पंचम आबादी
चतुर्थ आबादी
मथुरा के द्वितीय शताब्दि ई० पू० के सिक्के
तृतीय आबादी
उत्तर कृष्णामार्जित मृद्भाण्ड (१०० मृद्भाण्ड)
द्वितीय आबादी
चित्रित सलेटी कुम्भकला
प्रथम आबादी
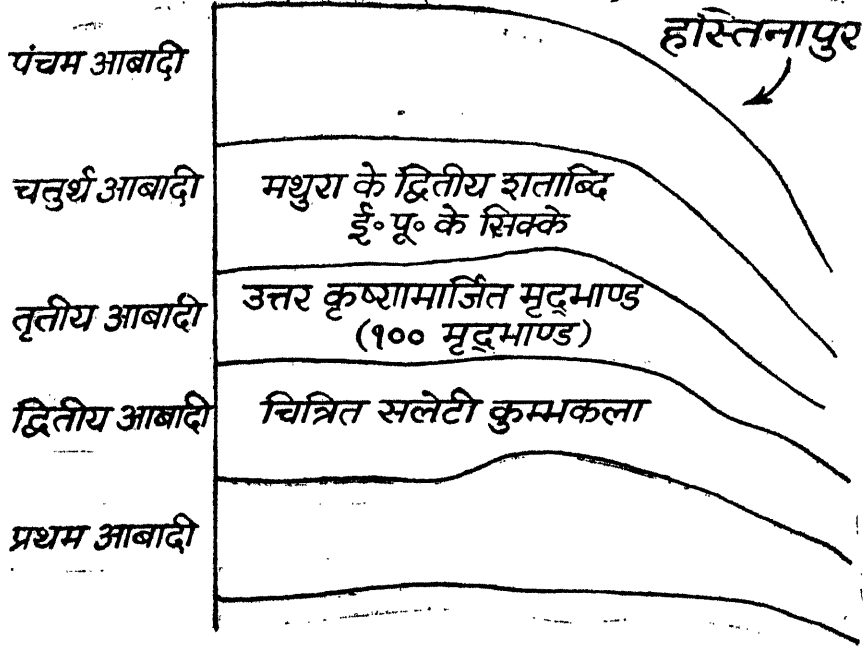
चित्र 7
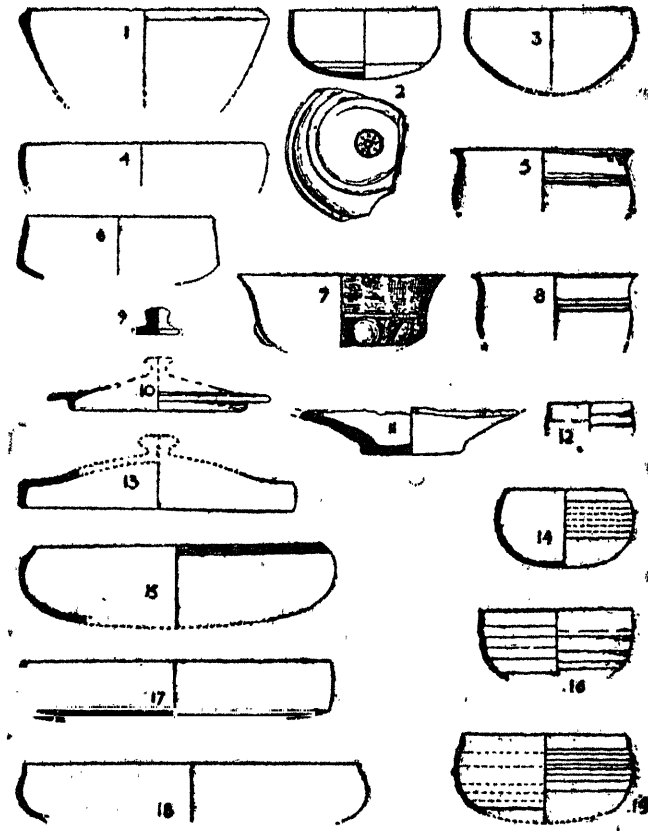
चित्र 8—Northern black polished ware : 1, 3, 5, 8, 10, 17, from Rupar; 2, 16, from Rajgir; 4, 9, 12, 18, from Tripuri; 6, from Bahal; 7, from Taxila (Bhir Mound); 11, 13 from Hastinapur, 14, 15, 19, from Ahichchhatra. $\frac{1}{4}$

मोहें-जो-दड़ो और हड़प्पा की कुम्भकला (Black on Red Ware)

चित्र 9—Distribution of painted grey and northern black polished wares

मोहें-जो-दड़ो और हड़प्पा में मिट्टी के बर्तन अत्यधिक संख्या में मिले हैं। सम्भवत: धातुओं की दुर्लभता के कारण धनी और निर्धन लोग प्राय: मिट्टी के बर्तन ही उपयोग में लाते थे। अधिकांश बर्तन चाक पर बनाये गये थे परन्तु हाथ से निर्मित हुए मृत्भाण्ड भी उपलब्ध हुए हैं। वहाँ पर उत्खनन से कुम्हार का कोई चाक न मिलने के कारण, निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता है कि ये सभी पात्र चाक पर ही निर्मित किये गये थे। सिन्धु सभ्यता के अन्तिम चरण में बने छ: सात भट्टे मिले हैं। ये गोलाकार हैं। राख आदि निकालने के लिए कुछ गुम्बद शैली के भट्टों के तलों पर एक बड़ा छिद्र बना दिया जाता था। जलाने के लिये बने चूल्हों के ऊपर फर्शों पर भी कई छिद्र के निशान वर्तमान थे। मोहें-जो-दड़ो में छ: भांड एक ही स्थान पर मिले थे, पिगट के अनुसार अनुमानत: यहाँ पर कुम्हारों का मुहल्ला रहा होगा (देखिये, पिगट, प्री० इं०, पृ० 191)। हाथ के बने बर्तन प्राय: क्षुद्राकार और निचले स्तरों में ही उपलब्ध हुए हैं। इनके आकारों को देखकर यह प्रतीत होता है कि सिंधु कालीन लोगों को हाथ से चलाया जाने वाला निकृष्ट चाक ही मालूम था। सम्भवत: पैर से चलाया जाने वाला उत्कृष्ट चाक यूनानियों अथवा पार्थियन लोगों द्वारा भारत में लाया गया था। अधिकांशत: पात्र पैर के चाक से ही बनाये जाते थे और इसी के फलस्वरूप पैर के चाक की उत्कृष्टता सर्वविदित है। डा० हाल के मतानुसार इन चाकों का सर्वप्रथम आविष्कार इलम में हुआ था परन्तु दूसरे विद्वानों में से कई इसका श्रेय ईरान को, कई मिश्र को और कई सुमेर को देते हैं। कुछ भी हो, इन मृद्‌माण्डों के आकार-प्रकार को देखकर यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि ये हाथ या पैर के चाक द्वारा ही निर्मित दिये गये थे। ये 6 या 7 फोट व्यास के गोलाकार ढाँचे होते थे।

ये पात्र नदियों से लायी गयी मिट्टी से बने थे परन्तु कुछ बर्तन फेयांस और पत्थर के बने हुए भी उपलब्ध हुए हैं। केदारनाथ शास्त्री ने लिखा है कि बर्तन बनाने में जिस चिकनी मिट्टी का प्रयोग किया है वह नदी पुलिन से लाई जाती थी। इसमें चूने और रेत का किंचित मिश्रण है। सतीशचन्द्र काला ने लिखा है : मिट्टी निकटवर्ती स्थानों से प्राप्त कर ली जाती थी। इस मिट्टी में कभी बालू, कभी चूना और कभी दोनों पदार्थ मिश्रित रूप में थे। सभी बर्तन उपादेयता के ध्येय से बने थे किन्तु फिर भी कुम्हारों की कल्पनात्मक प्रवृत्तियाँ भी निरन्तर काम करती रहीं। मिट्‌टी वा रंग पकाने से कभी तेज या हल्का लाल तथा कभी नीला हो जाता था। नीला रंग लाने के लिए किसी विशेष मिश्रित पदार्थ का भी सम्भवत: प्रयोग होता था। नीले रंग के बर्तनों पर कभी-कभी काले रंग की पालिश कर दी जाती थी। पतली सतह के बर्तनों के लिये एक और प्रकार की मिट्‌टी, जिसका रंग हल्का लाल है, व्यवहृत होती थी। इन मिट्‌टी के बर्तनों की गठन अधिक

दृढ़ है। मिट्टी में अभ्रक, चूना, बालू आदि भी कभी-कभी मिला दिया जाता था। प्रायः सभी बर्तन बड़ी सतर्कता के साथ पकाये गये मालूम होते हैं। एक विशेष वर्ग के बर्तनों पर पतले, हल्के लाल या पीले रंग की पालिश की जाती थी। कत्थई रंग भी कुछ बर्तनों पर लगा था। रंग लगाकर फिर उसे किसी वस्तु से घोटा जाता था जिससे कि उसके ऊपर चमक आ सके। हाथ के बने मिट्टी के बर्तन अति साधारण हैं। इनके ऊपर भी कभी-कभी हल्का रंग लगा दिया जाता था किन्तु इन पर पालिश नहीं थी।

हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो में सादे तथा चित्रित दोनों प्रकार के मृद्भाण्ड मिले थे जिनमें सादों की संख्या बहुत अधिक थी। स्मरण रहे कि विभिन्न रंगों से चित्रित मिट्टी के बर्तन निम्न सतहों से ही अधिकतर प्राप्त हुए हैं। इन पर किसी प्रकार का अङ्कन नहीं किया गया है। इनकी लाल सतह के ऊपर केवल काले रंग का चित्रण होता था। विभिन्न रंगों के अलंकरण वाले बर्तन चन्हूदड़ों में भी मिले हैं। परन्तु मोहें-जो-दड़ो तथा हड़प्पा में इस शैली के बहुत ही अल्प मात्रा में उपलब्ध हुये हैं। आर० सी० मजूमदार को मोहें-जो-दड़ो से अस्सी मील दक्षिण में स्थित 'आम्री' नामक स्थान से कुछ ऐसे ढंग के बर्तन मिले थे जिनकी सतह के हल्के पीले रंग की पृष्ठ भूमि पर गहरे लाल या काले रङ्गों का चित्रण था। इस शैली के बर्तन लोथल, रंगपुर, रूपड़, उत्तरी बलूचिस्तान में रन घुण्डई तथा पेरियानों घुंडई, दक्षिण भारत या फारस की खाड़ी, पश्चिमी एशिया, किश, उर, फारा, बाबल और जमदेत नसर आदि-आदि स्थानों पर बहु-अल्प संख्यक मात्रा में पाये गये हैं। भट्टी पर चढ़ाने के पहले चित्रित बर्तन को हड्डी अथवा पत्थर के खण्ड से अच्छी प्रकार घोटा जाता था जिससे बर्तन की सतह न केवल चमकीली ही बन जाती थी बल्कि इसमें से पानी भी नहीं टपक सकता था। चित्र डालने के लिये जो रंग प्रयोग में आते थे, वे प्रायः गेरू, हरताल, ताँबा, लोहा आदि खनिज पदार्थों से प्रस्तुत किये जाते थे। लाल कुम्भकला के अतिरिक्त हड़प्पा में काली या सलेटी कुम्भकला के बर्तनों के उदाहरण भी मिले थे जो सब छोटे आकार के थे।

साधारणतः कुम्भकला पर बहुवर्ण के अलंकरण पाये जाते हैं पर यह बहुवर्ण चित्रण केवल छोटे बर्तनों पर ही मिलता है और इस शैली में दुपत्ती, तिपत्ती, उलझे हुये वृत्त आदि थोड़े ही अभिप्रायों का प्रयोग किया गया है। अधिकांशतः चित्र लाल-काले ही हैं। यह चित्रण लाल पृष्ठा भूमि पर काले रंग से किया गया है। इन पर विभिन्न रेखाचित्र तथा पेड़ पत्तियों के अभिप्राय चित्रित हैं।

दो रंगों वाले मृद्भाण्डों पर बने हुए चित्रों में विविध पौधे, पल्लव और ज्यामितीय अभिप्राय हैं। पौधों में पीपल शमी, नीम, केला, खजूर और सरकंडा हैं। ज्यामितीय अलंकरणों में दो वृत्तों के बीच एक बिंदी, डमरू की तरह जाली, पंखुड़ी जैसी आकृति, ऊपर नीचे दौड़ती रेखायें, कंघा, अंग्रेजी वर्ण टी के आकार के अलंकरण, क्रूश, चौपड़ की तख्ती पर बने समचतुस्र भाग, कोण तथा तारे का अंकन, जाल, टोकरा, मछली के चंदवे, बिम्ब, बिन्दु, त्रिभुज, द्विगुण त्रिभुज, शतरञ्ज फलक और उलझे हुए वृत्त का अंकन विशद रूप में सिन्धु प्रदेश के बर्तनों पर हुआ है। मैके का अनुमान है कि इनके ऊपर बाद में अलंकरण करने की योजना रही होगी (मैके, फ० य० मो० जिल्द १, पृ० २२) मोर, मुर्ग, हिरण, साँप, टिड्डा, बकरा और मछली आदि पशुओं के अलंकरण बहुशः मृद्भाण्डों* पर पाये जाते हैं। मनुष्यों की आकृतियाँ बहुत ही कम मात्रा में मिली हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक मृद्भाण्ड पर एक

---

*कुछ भाण्डों में हल्की आँच के लिये सूखे गोबर का भी प्रयोग किया गया था। कुछ बर्तनों के आकारों एवं उनकी बनावटों को देखकर यह प्रतीत होता है कि मुलायम वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ धातुओं के बर्तन ढाले भी जाते रहे होंगे।

मकानों के लिए बर्तनों को खुली अथवा बन्द भट्ठियों में बन्द कर देते थे। आज भी पंजाब और सिन्ध के कुम्हार बर्तनों को इसी विधि से पकाते हैं।

मनुष्य अपने कन्धों पर बहंगी उठाये जा रहा है। उसके पैरोंके निकट मछली तथा कछुवा चित्रित है निचले भाग में एक जाली सी बनी है। सतीशचन्द्र काला का अनुमान है कि शायद यह जाली नदी का संकेत करती हो। इन्होंने एक अन्य खण्डित पात्र का उल्लेख किया है जिसको अलंकरण के लिये तीन भागों में बाँटा गया था। ऊपरी भाग में तो टोकरियों की बिनाई जैसा चित्रण है। मध्य भाग में पाँसे के समचतुस्त्र भाग, वृक्ष, मनुष्य, हरिण तथा चिड़ियाँ हैं। सबसे निचले भाग में सितारों का चित्रण है। मध्य भाग में सबसे महत्वपूर्ण दृश्य अंकित है। बाईं ओर किसी वृक्ष की टहनियों पर चिड़ियाँ बैठी हैं। इसके बाद बच्चे को दूध पिलाता बत्तख, कौआ, तारे की आकृति, मछली आदि अङ्कित हैं। दायीं ओर बिल्कुल किनारे पर एक मनुष्य हाथ को ऊपर उठाये है। उसके निकट ही हाथों को कुछ ऊपर उठाये एक बच्ची भी खड़ी है। इसके साथ फिर कौआ तथा मछलियाँ दीख पड़ती हैं।[१] मोर की आकृतियों का अलंकरण तत्कालीन कुम्भकला की विशिष्टता का परिचायक है। वृक्ष पत्तियों का ऐसा सुन्दर अलंकरण दुष्प्राप्य है। मैके का कथन ठीक ही है कि संसार की किसी अन्य सभ्यता में वृक्ष पत्तियों को ऐसा गौरव प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि सिन्धु प्रदेश की कला में हुआ है। इसके अतिरिक्त कंघे के दाँतों जैसा चित्रण, बुनाई, गुब्बारा, तारे, स्वस्तिका, फेफड़े की आकृति, सीढ़ी, बिछा चमड़ा तथा पात्रों के आकार की कई वस्तुएँ चित्रित की गई हैं।

मैके का कथन है :—

"The most popular design is composed of a series of intersecting circles, a pattern which does not appear on the Wares of any other ancient civilization and which, it must be confessed is some what bewildering to the eye, when it forms the only decoration on a Jar."

कई बर्तनों पर कुम्हार के चिह्न और मुद्राछापें भी अङ्कित हैं जो सम्भवतः स्वामियों के नाम थे। कुछ बर्तनों की पेंदियों में फफोले से बने हैं। इन्हें 'बार्बोटाइन' बर्तनों के नाम से निर्दिष्ट किया गया है।[२]

आकार में बर्तन कई प्रकार के थे, जैसे थालियाँ, प्लेटें, तसले, फलदान, हाँडियाँ, ढकने, कुठले, शलगमनुमा खुले मुँह और गावदुम पेंदी के नाँद, कटोरदान, बड़े और मँझोले गोल, मटके, बेलन के आकार की बोतलें, गाजर के आकार के माँड, तङ्ग मुँहवाली चिपटी कलसियाँ, अनाज नापने के पात्र, तश्तरियाँ, घटमंच, गंध पात्र, गावदुम पेंदी का लोटा, कुछ अनार की शकल के और कई एक गावदुम पेंदी के गिलास तथा कुछ अन्य खण्डित मृद्भाण्ड आदि। केदारनाथ शास्त्री ने उल्लेख किया है कि "महाकाय माट प्रधानतः" अनाज, पानी आदि घरेलू उपयोग की वस्तुओं के संग्रह के लिये थे। परन्तु इसके अतिरिक्त ये गौणरूप से एक दूसरे काम में भी आते थे। हड़प्पा की खुदाई में इस शैली के प्रायः 230 माट बिखरी हुई दशा में दीवारों, पक्के फर्शों और दुर्बल नालियों के सहारे रखे पाये गये थे। दूसरी बात यह है कि जो वस्तुएँ इन माँडों में पड़ी मिलीं वे प्रायः समान शैली की थीं जिससे प्रतीत होता है कि माट नगर की नाली प्रबन्ध की योजना के अधीन नहीं रखे गये थे और न ही इनके अन्दर की वस्तुएँ अकस्मात् इनमें आ गिरी थीं। इसमें सन्देह नहीं कि ये वस्तुएँ जानबूझ कर किसी निश्चित प्रयोजन के लिये इनमें डाली गई थीं। इस वस्तु समुदाय में गो-जाति के पशुओं, मुर्गों और मछलियों की हड्डियाँ, पशुओं और मनुष्यों की मृण्मय मूर्तियाँ, खिलौने, गाड़ियों के पहिये, गोले, गले सड़े गेहूँ और जौ के ढेले, सीपियाँ, फियांस और पकी मिट्टी की चूड़ियाँ, छोटे ढकने, गुलेल की गोलियाँ आदि सम्मिलित थे। कई

(१) सतीशचन्द्रकला, सिन्धु सभ्यता, पृ० ७१

(२) केदारनाथ शास्त्री के सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा पृ० ११६

मटकों में इनके अतिरिक्त विशेष वस्तुएँ भी थीं जैसे कछुए की खोपड़ी, हाथी दाँत और ताँबे की शलाकाएँ, बारहसिंगों की सींग, अभ्रक के खण्ड, हथियार, खरबूजे के बीज, सड़ा हुआ भुस आदि। इनमें से एक माट पर तीन चित्राक्षरों का लेख खुदा हुआ था जो शायद इसके स्वामी का नाम था।''

संक्षेप में यह कला अपने ढंग की निराली है। सिन्धु प्रदेश में इस कला ने विशेष प्रगति की जिसके फलस्वरूप आज दिन भी सिन्धु प्रदेश के बर्तनों की प्रसिद्धि है। ऐसी उच्चकोटि की कुम्भ-कला अन्यत्र दुष्प्राप्य है। यह कला तत्कालीन कुम्हारों की एक विशिष्ट कार्यकुशलता का परिचायक है तथा सिन्धु समाज के लिये एक बहुत बड़े देन एवं वरदान के रूप में सिद्ध हुई है। आर० सी० मजूमदार और डा० संकालिया ने लिखा है—

"Thus Indus civilization probably, a little before 1500 B. C. had produced a wonderful pottery, modified from region to region and age to age, was by 3000 B. C. of good quality, wheelturned and well baked, often thin and attractively painted with geometrical or semi—realistic motifs which betrayed both their on individuality and their cultural kinship with the societies of the great Plateau behiud them."

प्रो० चाइल्ड ने लिखा है कि तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० के आरम्भ में सिन्धु देश मुद्रा निर्माण तथा कुम्भकला के विषय में सुमेरियन सभ्यता के बहुत आगे था और महत्व की बात यह है कि सिन्धु सभ्यता का यह रूप उत्तरकालीन था[1]। (न्यू लाइट आन दि मोस्ट एन्शेंट ईस्ट, पृ० 211)।

चित्रित धूसर मृद्भाण्ड (Painted Grey Ware)—चित्रित धूसर मृत्पात्रादि का संबंध पूर्णतया कास्य और ताम्र-युग से है। ये मृद्भाण्ड चाक पर बनाये जाते थे। इनकी मिट्टी अत्यन्त मुलायम होती थी। इनका आकार अत्यन्त पतला होता था। इनको विधिवत अग्नि पर पकाया जाता था। पकाये जाने पर इनका रंग धूसर से भूरा ओर कभी कभी काला भी हो जाता था। साधारणतया मृत्पात्रादि काले रंग से चित्रित किये जाते थे पर कभी-कभी चाकलेट या लालरंगों का भी उपयोग किया जाता था। पात्रों के चित्रण में बाइक्रोम को उपयोग में लाया जाता था। यह पात्रों के रंगों को स्थिर रखने में सहायता पहुँचाता था। पात्र जब अच्छी तरह से सूख जाते थे तब उन पर बहु विधि चित्रण किया जाता था और उसके बाद उनको अग्नि में पकाया जाता था जिससे उनकी चित्रकारी सदैव के लिए सुरक्षित हो जाय। पात्रों के धरातलीय भाग पर तरह-तरह के चिह्न और रेखाएँ बनायी जाती थीं; जैसे सिगमा, स्वस्तिक, गोल चक्र, कान्सैंट्रिक सरकिल (Concentric circles), spirals और (linear रिम के चारों तरफ (बाहर और अन्दर दोनों ओर) साधारण क्षितिजाकर बैण्ड, बाहर, और Criss Cross रेखाएँ, गोल लहरीदार रेखाओं की पंक्ति, और निकलते

शवों के साथ में उत्खनन से कुछ घड़े (Perforated Jars) मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः इन घड़ों के अन्दर बच्चों के मृतप्राय शरीर को दफनाकर जमीन में गाड़ दिया जाता था। कुछ कब्रों में दो घड़े भी साथ-साथ में पड़े हुए उपलब्ध हुए हैं। इनका वास्तविक प्रयोजन क्या था, ऐसा निश्चित करना हमारे लिये असम्भव है। पर कुछ विद्वानों ने यह सुझाव दिया है कि इसका उपयोग हीटर के रूप में किया जाता था, कुछ ने कहा है कि घड़ों के अन्दर लैम्प रख कर उन्हें पारक बिन्दु पर रख दिया था, इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं कि इन घड़ों के अन्दर कुछ सुगन्धित द्रव्य (धूप आदि) जलायी जाती थी जिससे तत्कालीन समाज की स्त्रियाँ अपने केशों को सुगन्धित किया करती थीं या इन घड़ों का उपयोग वैदिक संस्कारों के प्रतिरूप में किया जाता था जहाँ पर वे अपने देवताओं के तर्पण के लिये जलों की अजस्र धाराएँ बहाया करते थे।

---

(१) न्यू लाइट ऑन दि मोस्ट एन्शेंट ईस्ट, पृ० २११

हुए सूर्य की किरणों का अनुकरण करने वाली स्केलोप्ड पेटर्न (Scalloped Pattern) की पंक्तियाँ आदि। इन पात्रों कि चित्रकला अत्यन्त उच्कोटि की है। इस प्रकार के पात्र हाथ के चाक पर निर्मित हुए भी उपलब्ध हुए हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। सीधे आकार के कटोरे और थालियाँ अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध हुए हैं।[1] इन पात्रों के साथ में गृहों के अवशेष, औजार. पकाई हुई मिट्टयों की विभिन्न आकृतियाँ मनके, लौह और पत्थर के उपकरण भी मिले हैं।

इस प्रकार के मृत्पात्रादि गंगा यमुना के बीच के क्षेत्र के अतिरिक्त पश्चिम में बीकानेर तथा दक्षिण में उज्जैन तक मिले हैं।[2] इसके अतिरिक्त अहिच्छत्र[3] (उत्तर प्रदेश, यहाँ पर सर्वप्रथम यह वेर पहचानी गयी थी और उत्तर कृष्ण-मार्जित मृद्‌माण्ड के निचले स्तर पर मिली थी। यहाँ पर उत्खनन से दोनों सभ्यताओं के स्तरों के बीच में कुछ सामंजस्य-ताएँ भी प्रतिलक्षित होती थीं, हस्तिनापुर और कौशाम्बी (इन दोनों स्थानों पर उत्तरकृष्णमार्जित तथा चित्रित धूसर-मृद्‌भाण्ड बीच में एक अन्य स्तर मिला था), बगपत (मेरठ जिला) इन्द्रपत, कंपिल पलवल, कुरुक्षेत्र, बहादुरगढ़ (रोहतक) मथुरा, पानीपत, राजा-का-किला, श्रावस्ती, रुपड़, (अम्बाला जिला), राजस्थान मध्य प्रदेश और बिहार (पूर्व में वैशाली तक और उत्तर में माधोपुर (यह जलन्धर से दक्षिण-पश्चिम 15 मील दूरी पर है) आदि-आदि स्थानों पर ये मृदभाण्ड बहु-अल्प संख्यक मात्रा में उपलब्ध हुए हैं। रुपड़ में सिन्धु घाटी सभ्यता से सम्बन्धित मृत्पात्रादि और धूसर मृत्पत्रादि के बीच में लम्बे काल अन्तर का संकेत मिलता है।

रुपड़				हस्तिनापुर			
चित्रित धूसर मृद्‌माण्ड				उत्तरी कृष्णमार्जित मृद्‌माण्ड			
×	×	×	×	×	×	×	×
Gap				Gap			
×	×	×	×	×	×	×	×
हड़प्पा-कुम्भकला				चित्रित धूसर मृद्‌माण्ड			

चित्र 10

"केदारनाथ शास्त्री का कहना है रोपड़ के खण्डहर की खुदाई में सिन्धु सभ्यता और चित्रित सलेटी कुम्भकला की संस्कृति के बीच जो लम्बा व्यवधान है वह पुरातत्ववेत्ता के लिए एक समस्या है। यदि 'चित्रित सलेटी कुम्भकला' के निर्माता वैदिक आर्य थे तो इस स्थान पर इसके साथ सिन्धुसभ्यता के लोगों के सम्पर्क का अवश्य प्रमाण मिलना चाहिए था क्योंकि यह स्थान गंगा के रम्य और समृद्ध मैदान में प्रवेश करने का द्वार था। वैदिक आर्यों के आने के पहले यह क्षेत्र सिन्धु-संस्कृति के लोगों के अधिकार में था जिनके सम्बन्ध में साधारण धारणा है कि वे भारत की मूल जातियों में से एक थे। प्राचीन साहित्य के उल्लेखों से पता लगता है कि भारत की मूल जातियों को पराजित करने तथा उन्हें अपने वश में लाने के लिए आर्य जाति को चिरकाल तक कठोर संघर्ष करना पड़ा था। रोपड़ में जो साक्ष्य प्रकाश में आया है उससे यह

---

1. "The commonest forms are straight sided bowls and dishes with upright convex sides and saggerbases, carinated, tapering and out going ledged or corrugated side and with round base." (Dr. Wheeler, early India and Pakistan, P, 26)

2. "The ware is characteristic of the Jumna-Ganges doab but occurs as far west as Bikaner and as far south as Ujjain." (Dr. Wheeler early India and Pakistan, P. 26).

3—"उत्तर प्रदेश के अहिच्छत्र टीले के अन्दर 'स्तर 9' में जो सलेटी रंग के कुम्भ खंड मिले वे चित्रहीन थे और "काली घृष्ट कुम्भकला" के साथ मिश्रित पाये गये थे।" (ए० इ० न० 1, पृ० 40)

संघर्ष सिद्ध नहीं होता । अतः अनुसंधाताओं को ऐसे प्राचीन स्थानों की खोज करनी चाहिए जहाँ इस संघर्ष के प्रमाण दृष्टिगोचर हों । जब तक यह खोज सफल नहीं होती यह सिद्ध करने की चेष्टा करना कि "चित्रित सलेटी कुम्भकला" के निर्माता वैदिक आर्य थे, निरर्थक है ।"

भारत-पुरातत्व-विभाग के विशेषज्ञों ने 'चित्रित धूसर कुम्भकला' को वैदिक आर्यों की कृति बतलाया है उनका कथन है कि "इसी शैली के ठीकरे गंगा सतलुज की उन्नत वादियों में स्थित 40 टीलों तथा घग्घर (प्राचीन सरस्वती) की उपत्यका में स्थित बीस अन्य खंडहरों में पाये गये हैं" । सन्, 1955 में 34 चित्रित धूसर मृद्भाण्डों की सूची प्रकाशित की गई थी । और दिन-प्रति दिन इसकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी" ।[1] श्री बी० बी० लाल ने हस्तिनापुर के खण्डहरों से उपलब्ध हुई चित्रित धूसर कुम्भकला को थेसली, लेक उर्मिया (ईरान) और सीस्तान से उपलब्ध कुम्भकला से सादृश्य स्थापित किया है । हस्तिनापुर खण्डहर के उत्खाता महोदय ने 'बोगाज' क्यु[2] लेख के आधार पर यह सिद्ध किया है कि 'काल-2' के स्तर में उत्खात 'चित्रित घूसर कुम्भकला' वैदिक आर्यों की कृति थी । कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार यह कुम्भकला विदेशीय लोगों की कृति थी और भारत में कहीं बाहर से लाई गई थी ।

"केदारनाथ शास्त्री का मत है 'चित्रित सलेटी कुम्भकला' के निर्माता ताम्रयुग के निधन लोग थे जिनकी भौतिक सम्पत्ति बहुत निकृष्ट कोटि की थी । इस बात को अधिक महत्व देने की आवश्यकता नहीं कि जिन स्थानों में इस कुम्भकला के ठीकरे मिले उनमें से कई एक महाभारत की कथा से सम्बन्ध रखते हैं ।......यह बात विचारणीय है कि इस शैली की कला का भारत के पश्चिमोत्तरी सीमाप्रांत तथा आस-पास के क्षेत्र में अत्यन्ताभाव है । यह वही भूखण्ड है जहाँ भारत में प्रवेश करने के अनन्तर वैदिक आर्य चिर काल तक आबाद रहे । स्वभावतः यह कुम्भकला इस प्रान्त में प्रचुर संख्या में मिलनी चाहिए । परन्तु ऐसा देखने में नहीं आया । ब्रह्मावर्त[3] और ब्रह्मर्षि देश में ही सीमित होने के कारण यह सम्भावना भी असंगत है कि यह कुम्भकला विदेशीय लोगों की कृति थी और भारत में कहीं बाहर से लाई गई थी ।"
डा० ह्वीलर के अनुसार—

"If Aryans must be dragged into this picture, it is possible to suppose that the P. G. Ware may represent the second phase of their invasion of India, when, from the Punjab, they entered and Aryanized the Middle country of the Ganges, Jumna doab, after picking up ideas and doubtless craftsmen in the Indus Valley and the Baluch border land......" (Early India and Pakistan, P. 28 and 126).

ह्वीलर पुनः कहते हैं कि

"The sudden emergence of high cless P, G, Ware fabric in the Ganges basin suggests, or even proves, that its technique had already been perfected elsewhere."

(1) बोगाज—क्यु—यह लघु एशिया के एक प्राचीन खण्डहर का नाम था, जहाँ से खत्ती (हिट्टाइट) और मितानियन आर्य राजवंशों के बीच निष्पन्न एक अहदनामें का लेख मिला था ।

केदारनाथ शास्त्री, सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा, (पृ० 236) ।

(2) घोष, अमलानन्द-दि राजस्थान डेजर्ट-इट्स आर्क्योलाजिकल ऐम्पेक्ट, पृ० ३८, ४२ और ऐन्शेंट इंडिया नं० १०-११, पृ० १-२,

3 —'तं देव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते' (मनु)

"अम्बितमे नदी तमे देवि तमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥" ऋग्वेद

नोट—काल 2 के स्तर से घोड़े की हड्डियाँ मिली हैं । इसी प्रकार की हड्डियाँ हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो के खण्डहरों में भी मिली हैं; विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि इस समय के लोग अवश्य ही आर्य थे क्योंकि आर्य लोग भी घोड़ों से चिर परिचित थे ।

बी० बी० लाल के अनुसार

"The Grey ware people might be a group of Aryans of the Mahabharata people."

डा० ह्वीलर और पिगट ने आर्यों के सैन्धव संस्कृति के विनाशकर्त्ता या उनके उत्तराधिकारियों के रूप में समझा है और कहा है कि यही लोग हड़प्पा संस्कृति के निर्माण के लिए उत्तरदायी थे। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर के खण्डहर से उपलब्ध हुई आर्यों की चिरपरिचित अश्वों की हड्डियाँ तथा रुपड़ के खण्डहर में उपस्थित हड़प्पा कुम्भकला और चित्रित धूसर मृद्भाण्ड के बीच के कालों के व्यवधान इस बात की पुष्टि के स्पष्ट प्रमाण हैं कि यह अवश्यमेव आर्यों से चिरपरिचित सभ्यता थी जो कि अपने विभिन्न रूपों में विभिन्न स्थानों में फलती-फूलती रही।

यद्यपि आर्यों को 'सिमेट्री एच' लोगों से और ताम्र-ढेर-सभ्यता के साथ समीकृत किया गया है, फिर भी जितनी अधिक सान्निध्यता चित्रित धूसर कुम्भकला के साथ प्रतिलक्षित होती है, उतनी अन्य किसी सभ्यता के साथ नहीं। संक्षेप से उपर्युक्त सभी प्रमाणों के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि सम्भवतः यह आर्यों की एक चिरपरिचित सभ्यता एवं कृति थी।
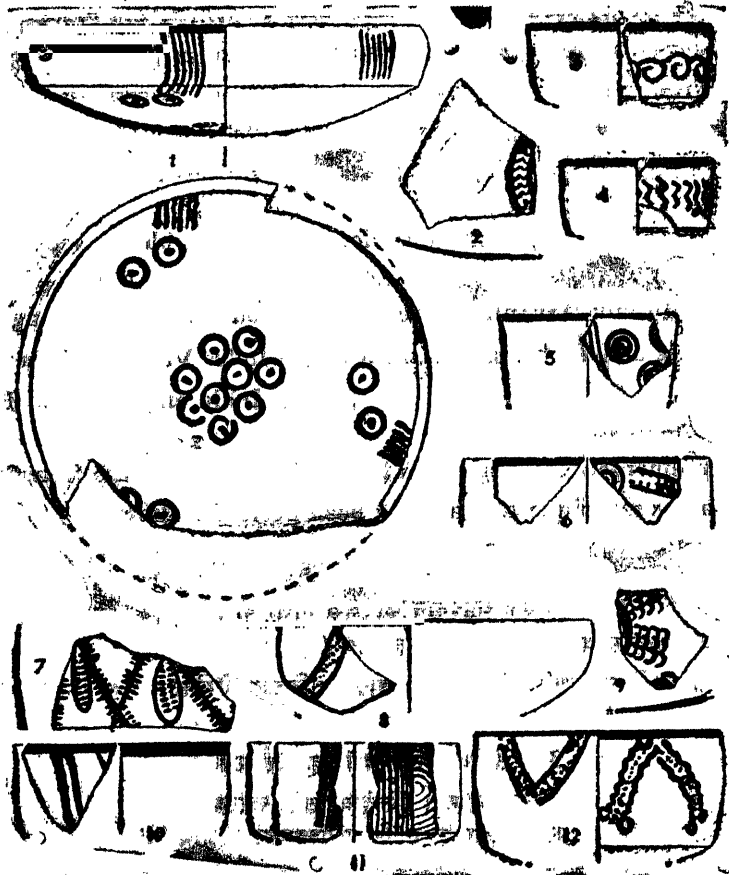
चित्र 11—Painted grey ware 1-4, from Ahichchhatra; 5—9 from Panipat, 10-19, from Hastinapura. $\frac{1}{4}$

तिथि—श्री बी० बी० लाल ने हस्तिनापुर के खण्डहर से उपलब्ध हुई 'चित्रित धूसर कुम्भकला' की तिथि ई० पू० 1100—800 ई० पू० निर्धारित की है। डा० ह्वीलर ने गंगा-यमुना के दोआब से उपलब्ध हुए प्रमाणों के आधार पर इस सभ्यता की तिथि 8—5 शताब्दी ई० पू० निश्चित की है। एफ० ई० पार्जीटर ने महाभारत युद्ध के आधार पर इसकी तिथि सं० 950 ई० पू० निर्धारित की है (क्योंकि हस्तिनापुर की स्थापना महाभारत युद्ध से पहले हो चुकी थी और उसका टीला भी महाभारतकालीन अवशेषों का सूचक था)

काली और लाल कुम्भकला (Black and Red Ware)—वे पात्र, जिनका ऊपरी भाग काले रंग से तथा निचला भाग लाल रंग से चित्रित रहता है, उनको काली और लाल कुम्भकला के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अथवा वे पात्र जिनका भीतरी भाग काले रंग से तथा बाहरी भाग लाल रंग से चित्रित रहता है, ऐसे उन पात्रों को काली और लाल (लाल और मटियाली कुम्भकला) कुम्भकला के नाम से अभिहित किया गया है। ये पात्र अपने आकार-प्रकार अलंकरण एवं चित्रण में अन्य कुम्भकलाओं से विभेद रखते हैं। इनकी अपनी एक विचित्र टेकनीक के कारण, पुरातत्वविज्ञों ने इस कुम्भकला को काली और लाल कुम्भकला के नाम से पुकारा। ये सभी पात्र इजिप्शयन (Egyptian) टेकनीक में निर्मित हुए प्रतीत होते हैं। ये मृद्भाण्ड इनवरटेड टेकनीक में (Inverted-Firing method) पकाये गये थे।

इन पात्रों को काल-क्रम एवं स्थान विभिन्नता के दृष्टिकोण से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(१) रंगपुर-और लोथल (हड़प्पा कालीन संस्कृति)

(2) सेन्ट्रल इण्डियन चालकोलिथिक कल्चर

(3) साउथ इण्डियन मेगालिथिक कल्चर या आइरन यूजिंग मेगालिथिक कल्चर

संक्षेप में प्राप्ति स्थानों का निम्न ढंग से उल्लेख किया गया है :—लोथन (सौराष्ट्र, अहमदाबाद जिले के घोलका तालुक के सरगवाला ग्राम के सन्निकट स्थित), रंगपुर (सौराष्ट्र, पूर्व लिम्बिद राज्य के मदर नदी के तट पर स्थित है, यह धन्धुक रेलवे स्टेशन से लगभग तीन मील दूर है, जौगढ़ (जिला गंजाम, दक्षिणी उड़ीसा में (रिशिकुल्य नदी के निकट स्थित), माहेश्वर (सेण्ट्रल इण्डिया, संम्भवतः महाभारत की माहिष्मती, मध्य नर्वदा के उत्तरी तट पर स्थित), राजपूताना के दक्षिण पूर्व में, बनस और चम्बल की घाटियों में, (जहाँ पर आर० सी० अग्रवाल ने सन् 1952, 53, 57, और 59 में उत्खनन किया था) नावदा तोली (मालव कल्चर, माहेश्वर के विपरीत, इन्दौर से 60 मील दक्षिण में नर्मदा के तट पर स्थित), नेवास (प्रवर नदी गोदावरी की सहायक नदी) पर, अहमदनगर और औरंगाबाद के मध्य में तथा बाम्बे से 150 मील पूर्व-उत्तर-पूर्व तट पर स्थित है) और नागदा (उज्जैन से लगभग 35 मील उत्तर-पश्चिम, चम्बल नदी के पूर्वी तट पर स्थित है) आदि। मालव कल्चर में उपलब्ध हुई कुम्भकला को डा० ह्वीलर मालव-वेर का नाम दिया है।

केदारनाथ शास्त्री का कथन है: रंगपुर और लोथल में लाल और मटियाली कुम्भकलाओं के ठीकरे जो समान स्तरों में मिले हैं इस तथ्य का प्रमाण हैं कि रंगपुर में उद्घाटित सिन्धु संस्कृति का रूप इसके ह्रास-काल का है। हड़प्पा और

नोट—बाड़ा और सलौरा के साक्ष्य के आधार पर भी केदारनाथ शास्त्री ने यह सिद्ध किया कि 'चित्रित सलेट कुम्भकला' के निर्माता वैदिक आर्य नहीं थे। ये खण्डहर रोपड़ के निकट एक दूसरे से लगभग 300 गज के अन्तर पर स्थित हैं। सन् 1954-55 में पुरातत्व-विभाग के इन प्रागैतिहासिक खण्डहरों का उद्घाटन कराया जिसमें बाड़ा के टीले में हड़प्पा संस्कृति के उपकरण तथा सलौरा के टीले में केवल सबसे नीचे की आबादी में चित्रित धूसर कुम्भकला के ठीकरे मिले थे (देखिए-केदारनाथ शास्त्री, सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र (हड़प्पा), पृ० 246 और इ० आ०, 1954-55, चित्र 3)।

मोहें-जो-दड़ों में सिन्धु संस्कृति के स्तरों में केवल लाल कुम्भकला के ही खण्ड मिले थे । रंगपुर और लोथल में हड़प्पा संस्कृ... स्तरों में एक साथ लाल और मटियाली कुम्भकलाओं का मिलना इस बात का प्रतीक है कि सौराष्ट्र के निवासी सिन्धु संस्कृ... लोगों और हड़प्पा निवासी उनके पूर्वजों में एक लम्बे समय का व्यवधान पड़ चुका था।[1]

रंगपुर में यह कुम्भकला "चमकीली लाल कुम्भकला" (Lustrous Red Ware) के ऊपरी सतह पर अर्थात् सभ्यता के अन्तिम चरण के उच्च स्तर पर उपलब्ध हुई है। डा० संकालिया ने अपनी पुस्तक में लिखा है :—

"The late phase also contained in its top level, sherds of Black and Red Ware which had a technical similarity with the "megalithic" pottery of Southern India. This Black and Red Ware, of which more will be said, is not normally earlier than 1000 B. C. and is often much later; but is certainly occurs, in small quantities, with late Indus valley material at Lothal, which is only thirty miles north east of Rangpur, and a similar association has now been observed at Rosadi in mid Kathiawad."

इसी प्रकार से लोथल के द्वितीय काल की आबादी में इस कुम्भकला के अवशेष मिले हैं। यद्यपि यह कुम्भकला सैन्धव संस्कृति की कुम्भकला से विभेदात्मक है। फिर भी कुछ मृद्भाण्डों पर तत्कालीन संस्कृति के अनुकरण अक्षरशः पाये जाते हैं। यहाँ पर इस संस्कृति के बर्तनों में केवल कटोरे (With blunt carinated shoulder) और साधारण थालियाँ ही मिले हैं। इस पर बहु-विधि अलकंरण तथा साँप, बारहसिंघा और बत्तखों की आकृतियाँ चित्रित हैं। पात्रों का अन्यरूप सैन्धव संस्कृति के सदृश है। डा० संकालियाँ का कथन है:—

"If these and others also occur in period I, then Lothal should be regarded as not mature or true Harappan but as Wheeler calles it a "Sub-Indus variety."

लोथल में इस संस्कृति के मिलने के कारण यह विदित होता है कि हड़प्पावासियों को इसका ज्ञान सौराष्ट्र में ही हो गया था।

नावदातोली में यह सभ्यता प्रथम काल की आबादी में मिली है। यहाँ से उपलब्ध बर्तनों में कटोरे और प्याले (Bowls and cups) प्रमुख हैं। इन बर्तनों पर चित्रण सफेद रंग से किया गया है।

इसी प्रकार की संस्कृति राजपूताना के अहर नामक स्थान से भी उपलब्ध हुई है। यहाँ के बर्तनों की अहर के बर्तनों के साथ तुलना करने पर यह विदित होता है कि सम्भवतः इन पात्रों का राजपूताना के सीमावर्ती प्रान्तों से इसका आयात किया जाता रहा होगा। डा० ह्वीलर ने लिखा है :

"Though it copies some of the shapes of the Malwa Ware, its own distinctive shapes are a shallow dish with broad flat rim and stand and a high concave-walled cup with bulging bottom. An almost complete bowl of the latter in fine white slip recalls a similar vessel from the earliest period at Sialk, in Iran. A band of running antelopes and dancing human figures seem to be characteristic designs in this fabric."

श्री आर० सी० अग्रवाल ने दक्षिणी-पूर्वी राजपूताना के बनस और चम्बल की घाटियों में उत्खनन करके एक नयी संस्कृति को प्रकाश में ला दिया, जिसको चित्रित काली और लाल या क्रीम या अहर संस्कृति कहते हैं। उन्होंने लिखा है कि यहाँ पर के प्रथम चरण के पात्रों पर केवल बाहरी और तथा द्वितीय चरण के पात्रों पर दोनों ओर (बाहरी और भीतरी) पालिश किये गये थे।

---

1. सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा पृ० २४५

माहेश्वर में यह संस्कृति लौह उपकरणों तथा उत्तरी-कृष्णमार्जित-मृद्‌माण्डों के हाथ में मली है। डा० ह्वीलर ने इसकी तिथि प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० निर्धारित की है। उन्होंने लिखा है कि यहाँ पर रिम-हीन कटोरे और छिछली थालियों के आकार के बर्तन मिले थे। साथ ही ग्रोटी कोर से युक्त लाल ग्लोबुलर घड़े भी यहाँ से उपलब्ध हुए हैं। ह्वीलर महोदय ने इस संस्कृति को बरनिश्ड मेगालिथिक ब्लेक एण्ड रेड वेर के नाम से अभिहित किया है—

तिथि—रंगपुर—ई० पू० 1000

लोथल—ई० पू० 1500—1400

सेण्ट्रल इण्डियन चाल्कोलिथिक कल्चर—1800 ई० पू०–800 ई० पू० तथा कुछ विद्वानों ने उत्तर-कृष्णमार्जित मृद्‌माण्ड सभ्यता के आधार पर 800 ई० पू०—500 ई० पू० निर्धारित किया है।

साउथ इण्डियन मेगालिथिक कल्चर—5 या 4 शताब्दी ई० पू०—प्रथम शताब्दी ई०।

रुलेट युक्त कुम्भकला—यह कुम्भकला सर्वप्रथम 1945 में अरिकमेडु (दक्षिण भारत में पाण्डिचेरी के निकट) के उत्खनन में अरिटीन (Arretine) स्थानीय मृत्पात्रादि के साथ में मिला था। जहाँ यह ईसवी की प्रथम शताब्दी में इटली से आयत किये गए थे। इस तिथि की पुष्टि चन्द्रावली (उत्तरी मैसूर) से प्राप्त उपकरणों से होती है (जहाँ पर तिबेरियस (Tiberius) का डिनेरियस (denarius), जिसकी तिथि ई० 26-37 थी और जो तत् सद्दस तथा रुलेट युक्त कुम्भकला के साथ पाया गया था)। इस कुम्भ कला के पात्रों का आकार विशेष कर थालियों नुमा है, जिनका व्यास लगभग 12 इंच के है और जिसका किनारा अन्दर की ओर मुड़ा हुआ है और बीच में रुलेट आकार के एक दूसरे से मिले चक्र हैं।[1] इसी प्रकार के मृद्‌माण्ड (प्रथम शताब्दी ई० के) दक्षिणी उड़ीसा में रिशिकुल्या नदी के निकट, जिला गंजाम के जौगढ़ नामक स्थान पर तथा उत्तर-पूर्व में ताम्लुक (प्राचीन) ताम्रलिप्त-बंगाल में और उत्तर-पश्चिम में सिन्ध के झूकर नामक स्थान पर पाये गये हैं। इनका रंग धूसर या काला है और धरातलीय भाग बहुत चिकना है। सुन्दर रुलेट युक्त मृत्पात्र संभवतः व्यापारियों द्वारा लाये गये थे और उनसे मिलते जुलते स्थानीय थे। दक्षिण भारत में रुलेट युक्त मृत्पात्रादि भारत का रोम के साथ व्यापार तथा दक्षिण भारत के ईसवी की प्रथम-दूसरी शताब्दी की संस्कृति का चित्रण करने में विशेष रूप से सहायक हुए। डा० ह्वीलर ने लिखा है।

"The Ware particularly characteristic of the South Indian areas reached by Roman trade in the Ist and 2nd centuries A. D. with an appropriate extension in the north east to Tamluk, the ancient Tamralipti or Ptolemy's Tamalites, in Bengal, and a stray sherd in the far North-West at Jhukar in Sind." (See Early India Pakistan, P. 33).

संक्षेप में भारतीय पुरातत्व अनुसंधान और तैथिक निर्धारण में इन संस्कृतियों का एक बहुत बड़ा अनुदान रहा है और रहेगा।

---

1. "This pattern is not an Indian feature and is certainly derived, like the associated Arretine, from the Mediterranean." (Dr. Wheele, Early India and Pakistan, P. 32)
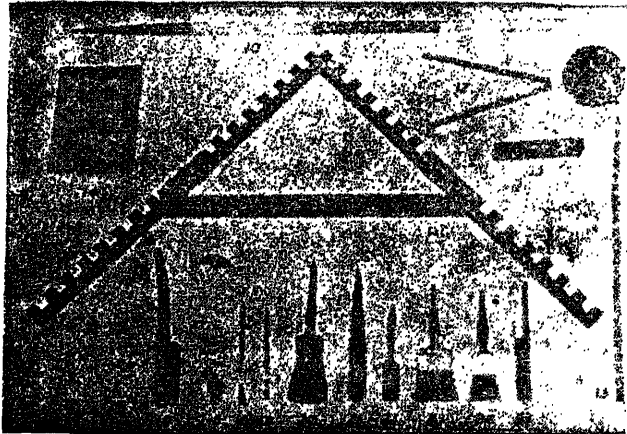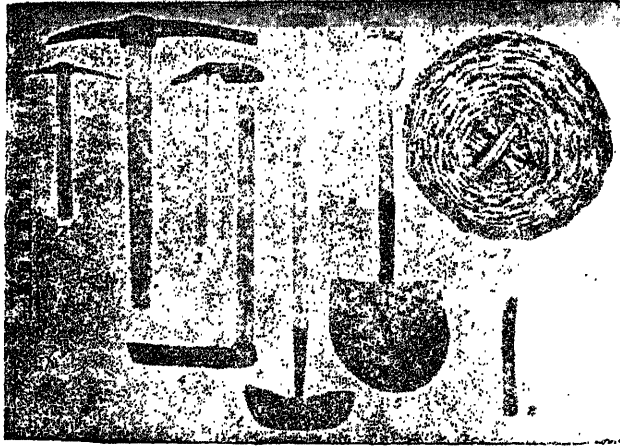
चित्र 12—Selection of tools from an Eastern excavation
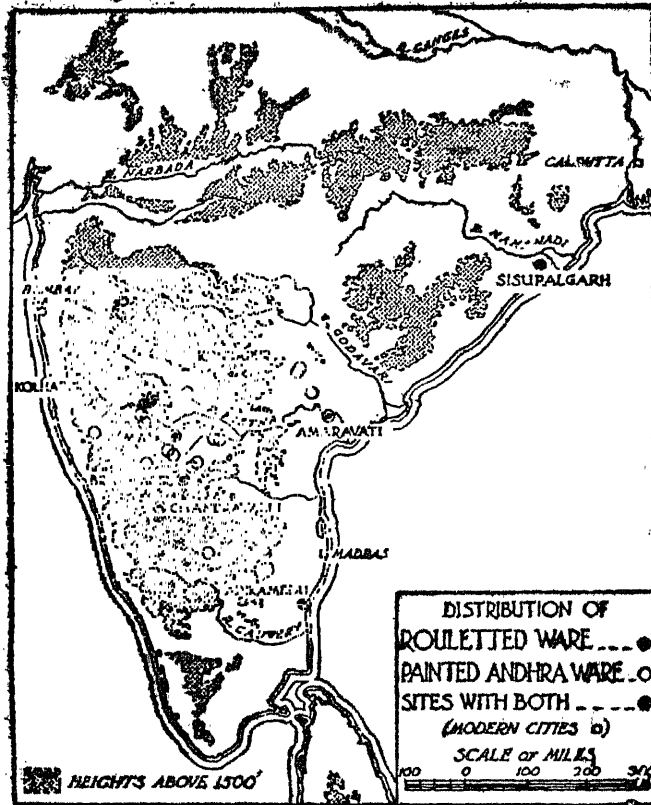
चित्र 13—Map of India showing sites which have prorduced 'rouletted ware' of the firss century A. D.

अध्याय | 10

विज्ञान का पुरातात्त्विक तैथिक निर्धारण में योगदान

तैथिकी अथवा काल मान का निर्धारण अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। प्राचीन मनुष्यों की सभ्यताओं का सबसे प्राथमिक युग प्रत्नाश्म अथवा पूर्व पाषाण (Paleolithic age) था। विद्वानों ने इसके सबसे प्राचीन काल की तिथि ईसवी पूर्व 600,000 वर्ष तथा सबसे आधुनिक काल की तिथि 75,000 से 10,000 वर्ष ई० पू० निर्धारित की है। इसी प्रकार से मध्याश्मीय अथवा मध्य पाषाण[1] Mesolithic age) युग का आरम्भ लगभग ई० पू० 10,000 वर्ष में रखा गया है। ब्रिटेन और जर्मनी में उत्तर पाषाण युग Neolithic age) का आरम्भ ई० पू० 2500 से माना गया है। डा० बैजनाथपुरी ने लिखा है, "मिश्र और मेसोपोटामियाँ में इस युग को 1000 वर्ष पहले रख सकते हैं और न्यूजीलैण्ड में तो यह 19 वीं शताब्दी तक था।" कैप्टन कुक ने वहाँ, के मौरियों को इसी युग की सभ्यता के अन्तर्गत पाया। मिश्र और मेसोपोटामियाँ के धातु युग (कांस्य युग, ताम्रयुग और लौहयुग) की तिथि लगभग ई० पू० 3000 वर्ष मानी गयी है। लौहयुग का आरंभ ईसवी पूर्व की 12 वीं शताब्दी के लगभग माना गया है, वैसे हिताइतों ने इसका आरंभ लगभग 1900 ई० पू० से किया था। उपर्युक्त विभिन्न प्राच्य युगों की तिथि, भूतैथिकी (geochronology) वृक्ष तैथिकी (Dendrachronology or Tree ring method) और पराग परीक्षण (Pollengrain-analysis) आदि-आदि साधनों से भी निर्धारित करने की चेष्टा की गई है. इसके अतिरिक्त भूगर्भ (geology) और नृतत्व विज्ञान (Anthropology) का भी इस विषय में विशेष योगदान रहा है। तिथि निर्धारण के लिए वनस्पति शास्त्र, रसायनशास्त्र और अणुशास्त्र का विशेष रूप से आश्रय लिया गया है यथा कार्बन परीक्षण Carbon dating) और वृक्ष के चक्कर (Tree ring) आदि। मनुष्य की हड्डियाँ तथा साथ में मिले अवशेष, पशुओं का सम्पर्क और जलवायु भी पुरातत्वविद के लिए तिथि निर्धारण में विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं। हिमानी युग के पश्चात् की हरियाली, वृक्ष, पौधे और अंकुर के कण के अवशेष—जो पत्थर पर जमकर रह गये थे—भी मनुष्य की प्रायोगिक वस्तुओं के साथ मिलने पर तैथिक-बोध (Chronological sense) में सहायक होंगे।[2]

अब हम संक्षेप में काल मान के विभिन्न साधनों का उल्लेख कर रहे हैं जो निम्न दर्शनीय है—

स्तर विन्यास—उत्खनन में स्तर विन्यास का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। स्तर विन्यास के अभाव में प्राप्त वस्तुओं की तिथियों का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता है। इसलिये उत्खाता को उत्खनन के समय वस्तु, उसकी दिशा, गहराई, मिट्टी बनावट तथा स्तर का सही ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि एक ही

---

1. इस युग का एक पत्थर का औजार पेरीनीज पहाड़ से उत्तर में, टूलोज, से चालीस मील की दूरी पर मगिल गुफा से प्राप्त हुआ (दे० डा० बैजनाथ पुरी, पुरातत्व विज्ञान, पृ० 9)

2. डा० बैजनाथ पुरी, पुरातत्व विज्ञान पृ० 13

नोट—यह बात स्मरणीय है कि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से कई प्रकार के प्राचीन मनुष्यों की खोपड़ियाँ (Skulls) और तरह-तरह के प्रायोगिक औजार मिले हैं।

परत में कई युगों की सभ्यताएँ दबी पड़ी रहती हैं। उदाहरण स्वरूप एक स्थल पर एक ही परत में कुषाण मुद्रा, 1910 की इकन्नी और हड़प्पा की मोहर उपलब्ध हुई है। ऐसी अवस्था में स्तर विन्यास के आधार इन सब पदार्थों को एक ही काल का मानना न्यायसंगत न होगा क्योंकि इनके कालों के बीच एक बहुत लम्बे समय का व्यवधान है। अत: इनको निम्न ढंग से रखा जा सकता है। (1) हड़प्पा कालीन मोहर (सम्भवत: 2500–1500 ई० पू०) (2) कुषाण मुद्रा (ईसवी की द्वितीय शताब्दी का)। (3) 1910 की एक इकन्नी। पर ऐसा उदाहरण अभी तक बहुत ही कम मिला है। मुख्यतया जिस स्तर में जो पदार्थ मिलें, उनके आकार-प्रकार, बनावट एवं कला कौशल का भली भाँति अध्ययन कर उनका सम्बन्ध उसी स्तर की सभ्यता से जोड़ा जाय, अन्यथा काल-मान निर्धारित करने में सफलता नहीं मिल सकती है। उदाहरण के लिए यदि किसी स्थान पर उत्खनन करते समय हुविष्क के सिक्के मिलें तो उस स्थान का सम्बन्ध हुविस्क के साथ निश्चित हो जायगा। इसी तरह से यदि वहाँ पर उत्तरी कृष्णमार्जित कुम्भकला के अवशेष मिलें तो उक्त स्थान का निवसित युग ई० पू० पाँचवीं से दूसरी शताब्दी तक मान लिया जा सकता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि तैथिको निर्धारण में स्तर विन्यास का एक बहुत बड़ा योगदान रहा है।

पदार्थ क्रम (Typology)[1] पदार्थों के क्रमिक विकास के आधार पर भी उत्खनन क्षेत्र की तिथि निर्धारित की जा सकती है। कुम्भकला के आकार-प्रकार, निर्माण, विकास और अलंकार का विधिवत् अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस युगों में कितनी मात्रा में विकास हुआ। उत्खाता के लिए यह विकास क्रम तिथि निर्माण का साधन बन जाता है तद् प्रयोजन में दैनिक आवश्यकता की सभी चीजों तथा सम्बन्धित पदार्थों का अध्ययन अनिवार्य है। इस विधि से केवल ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक युगों तक तिथियाँ ही निश्चित की जा सकती हैं। यूरोपियन कांस्य युग (European Bronze Age) की तिथि उपर्युक्त तैथिकी क्रम के आधार पर निर्धारित की गयी थी।

वृक्ष तैथिकी या वृक्षों के चक्कर (Dendro Chronology or Tree Ring method)—कुछ समय तक यह वर्व-तैथिकी (Varve Chronology) का जीवविज्ञानात्मक भाग कहा जाता था। सन् 1901 और 1913 के बीच में डाक्टर ए० ई० डागलास (Douglass—अरिजोन विश्वविद्यालय के निर्देशक) ने कुछ ऐसी घटनाओं की खोज की जिसमें उन्हें कुछ क्षुद्र सौर्य किरणों में परिवर्तन और विभिन्नताएँ प्रतीत हुई। उन्होंने पेड़ों का विधिवत अध्ययन किया और तदुपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि जलवायु के प्रभाव के कारणवश शताब्दियों के ऊपर ये minor Solar Variations का कोर्स पुन: निर्माण करते हैं (reconstruct the course of miner Solar Variations over a period of Centuries)। उन्होंने, येलो वेस्टर्न पाइन और स्काट-पाइन को वृक्षों में चक्कर परिवर्द्धन का एक अत्युत्तम देश बतलाया। इसी प्रकार से उत्तरी अरिजोन और न्यू मेक्सिको के मार्जिनल जंगल तथा लेकर्टिंग्सटेड ट्रस्क, गाटलण्ड, और स्वीडन वृक्ष चक्कर परिवर्द्धन के उदाहरण हैं।

जिस स्थान की जैसी जलवायु होती है उसी के अनुसार चक्कर में वृद्धि होती रहती है। गीली जलवायु में इसकी संख्या में वृद्धि तथा सूखे जलवायु में बन्द हो जाती है। चक्करों की वृद्धि के लिए जलवायु सम्पन्न सुन्दर वातावरण होना चाहिए। प्रत्येक 11 साल में एक चक्कर समूह का निर्माण होता है।

1—"Typological development carries more weight when supported by the evidence of associated finds. When certain forms at analogous stages of evolution are consistently found together and when more evolved stages of these forms are likewise found consistently in association, the reliability of any sequence based on a theoretical line of evolutionary development in sensibly increased subject always to the broader considerations. (Graham Clark, Archaeology and Society, P. 137).

कार्बन 14 (Carbon 14)--सन् 1949 में अमेरिका में इसकी खोज की गयी। वहाँ यह एटामिक खोज से प्रादुर्भूत हुई (Product of atomic research)। इससे 40,000 वर्ष पुराने (अर्थात् पूर्व पाषाण, मध्य पाषाण-उत्तर पाषाण तथा कांस्य युगो की तिथि) पदार्थों की निधारित की जा सकती है। इस प्रणाली का प्रयोग प्रोफेसर डब्ल्यू० एफ० लिबी, डा० ई० सी० एण्डर्सन और डा० आर० जे० अर्नोल्ड ने, ईजिप्शियन टाम्ब्स (Egyptian tombs) से उपलब्ध हुई लकड़ी (Wood-samples) पर किया। इस विधि से मध्य पाषाण युग तक की तिथियों का निर्धारण भली-भाँति किया जा सकता है। इसको रेडियो कार्बन भी कहते हैं। इसके द्वारा प्राचीन स्थान से प्राप्त की कार्बन मात्रा के अनुसार तिथि निर्धारित करते हैं। यह तिथि अनिश्चित रहती है और इसमें 275 वर्ष इस ओर या दूसरी ओर जोड़ना पड़ता है। इसका प्रयोग किसी स्थान से उपलब्ध वस्तु पर ही किया जा सकता है, स्थान ढूँढ़ने के लिए नहीं।

इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक जीवित पदार्थ में कार्बन की मात्रा विद्यमान रहती है। बाहरी स्थानों से आने वाली कासमिक किरणें, वातावरण से एटामिक भार 14 का रेडियो एक्टिव कार्बन एटम्स उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार से कार्बन 14, एटामिक भार 12 का साधारण कार्बन बनाती है। कार्बन का परमाणु स्थायी और उसका भार 12 होता है। कासमिक किरण के प्रभाव से कार्बन का कुछ अंश रेडियो एक्टिव कार्बन 14 में बदल जाता है। कार्बन 14 और 12 का वायुमण्डल के साथ कार्बन-डाइ-आक्साइ में आदान-प्रदान होता रहता है। मृत्यु अथवा पदार्थ के नष्ट होने पर आदान-प्रदान की क्रिया बन्द हो जाती है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कार्बन 12 का परमाणु भार स्थायी रहता है और कार्बन 14 का अस्थायी रहता है। पदार्थ के नष्ट या मृत्यु हो जाने पर इसका भार धीरे-धीरे नष्ट होने लगता है और अन्त में नाइट्रोजन तत्व का रूप धारण कर लेता है। नाइट्रोजन का परमाणु भार भी 14 ही होता है।

ह्विलर महोदय ने परमाणु का अर्द्धजीवन 5000 या 5700 वर्ष का माना गया है। पेड़ के नष्ट होने के बाद उसके आधे कार्बन नाइट्रोजन में परिणत हो जाते हैं।[1] 5000 वर्ष में कार्बन की केवल आधी मात्रा, 10,000 में मूल का चौथाई, 15,000 वर्ष में केवल $\frac{1}{8}$ भाग और 20,000 में पूर्णतया कार्बन की मात्रा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार से इसकी एक सारिणी बनाकर तिथि निर्धारण किया जा सकता है। पर यह प्रणाली प्रत्यन्त ही दुष्कर एवं व्ययपूर्ण है।

फ्लोरिन परीक्षा (Flourine Test)—सन् 1844 से यह जाना जाने लगा कि अस्थि अवशेष जो पृथ्वी के गर्भ में (या कब्रों में) दबे पड़े रहते हैं उनमें फ्लोरिन की मात्रा होती है। फ्लोरिन का संचार हड्डियों में शनैः शनैः होता है। इसकी उत्पत्ति भूमि और जल से होती है और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इसकी मात्रा में परिवर्द्धन भी विभिन्न ढंगों से होता है। कहीं पर कम और कहीं पर ज्यादा। इसका मूल कारण उस स्थान की मिट्टी और जल का प्रभाव होता है। इस प्रकार से उसी भूमि में पड़ी हुई हड्डियों पर इसके कण जम जाते हैं। जितनी हड्डी पुरानी होती जायगी उतने ही अधिक फ्लोरिन के कण इस पर जमते जायेंगे। रासायनिक विधि से इनका परीक्षण कर तिथि निर्धारित की जा सकती है। यूरेनियम (Uranium) से भी इसका परीक्षण किया जा सकता है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग पिल्ट डाउन (Pilt-down) पुरुष के सम्बन्ध में किया गया था। इस प्रणाली से केवल साधारण युग का काल मान निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्रों में इनकी मात्रा में विभिन्नता होती है। संक्षेप में यह निश्चित तिथि निर्धारित करने में असमर्थ है। सन् 1888 में स्वांसकम्बे में, गेली हिल ग्रेवल पिट के उत्खनन से धरातल से 8 फिट नीचे, एक ढाँचा (हड्डियों का) उपलब्ध हुआ था। परीक्षण के उपरान्त उत्खाता लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वांसकम्बे की खोपड़ियों (Skulls) और पूर्व पाषाण काल की हड्डियों में 2 प्रतिशत फ्लोरिन की मात्रा अपूर्व पाषाण काल में 1 प्रतिशत

तथा आधुनिक हड्डियों में 0.3 से 0.05 प्रतिशत विद्यमान है। गेल की हड्डियों में 0.3 प्रतिशत फ्लोरिन की मात्रा मौजूद थी। इस आधार पर उत्खाताओं ने उस स्थान की आधुनिक सभ्यता की तिथि निर्धारित की। यहाँ पर डा० ओकले (Oakley) का मन्तव्य महत्वपूर्ण है—

"It does not provide a means of close relative dating. A given bone or group of bones shows a certain range in fluorine content. Unless the difference in age between the bones which are being compared is considerable (e. g. 10,000 years) there is usually an overlap in the range of their flourine—contents. For this reason it would probably be impossible by this method to differentiate clearly between say a Saxon and a neolithic skeleton; where as it should enable one, for example, to distinguish bones of neolithic or later age from others of Acheulian age, when both occur under similar conditions at the same locality."

अनुवर्षस्तरी विश्लेषण। (Varve clay analysis) जब बर्फ पिघल कर नदियों और झीलो में गिरती है तो वह अपने साथ बालू और मिट्टी भी बहा कर ले आती है। वह मिट्टी झील के अन्दर इकट्ठा होती रहती है। पहले पत्थर फिर बालू और फिर चिकनी मिट्टी। इसी प्रकार मिट्टी का जमाव प्रतिवर्ष होता रहता है जिससे टीलो का निर्माण हो जाता है। खुदाई के समय इसी जमाव को पहचान कर विभिन्न स्तरो का निर्धारण किया जाता है। हालैण्ड में प्रसिद्ध विद्वान 'द गीर' (De Geer) ने इसी प्रकार के टीलों की खुदायी करके विभिन्न प्रकार के स्तरों की तिथि का निर्धारण किया था।

पराग परीक्षण (Pollengrain analysis or Vegetation and pollen analysis)—तुषारीय काल में पृथ्वी का अधिकांश भाग बर्फ से ढका था। बर्फ के पिघलने पर वहाँ कुछ ऐसे बीजों के कण मिले जो पराग युक्त और अपनी अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़े हुए थे। ये पराग के कण (जिन्होंने बर्फ के पिघलने पर बीज का रूप धारण किया) सम्भवतः आदि काल में चिड़ियों अथवा कीड़ों द्वारा एक पुष्प से दूसरे पुष्प में डाल दिये गये और वे वहाँ पर संचेतित होते रहे। सर्व प्रथम पालियो बीज शास्त्रज्ञ (Paleo botanist) ने इन पराग निर्मित बीजों का गहन अध्ययन किया तत्पश्चात् विभिन्न क्षेत्रों के पराग को संचित कर एक तालिका के अन्तर्गत मनुष्य और उसके निवसित युग के तैथिक निर्धारण का प्रयास किया। अतः यह प्रणाली ग्लेशियल युग के बाद से सम्बन्धित है। इसके द्वारा प्राचीन युग की जलवायु की परीक्षा भी की जा सकती है और यह पता लगाया जा सकता है कि आदि काल की वनस्पति तथा स्थानीय वनस्पति में कितनी विभिन्नता है। स्काटलैण्ड में इस प्रणाली को उपयोग में लाया गया और इसी आधार पर वहाँ के मनुष्य के निवास की आदि तिथि ई० पू० 7000 वर्ष निर्धारित की गई, पर अधिकांश विद्वानों की सम्मति में यह तिथि निश्चित नहीं है। इस विषय में श्री ग्रहमे क्लार्क का मन्तव्य उल्लेखनीय है—

"Pollen analysis has been used to distinguish deposits from the various Interglacial phases of the pleistocene Ice age, but the most detailed results have so far been obtained from sediments in the beds of lakes formed by the melting of the Late Glacial ice sheets.

नोट—कार्बन डाई आक्साइड पौधों से ली गयी है। जानवर भी अपनी खुराक पौधे से ही लेते हैं। इस प्रकार से कार्बन 14 और 12 की मात्रा सभी जीव पदार्थों में समान रहती है और इसी प्रकार से वायुमण्डल में भी।

These sediments reflect the final fluctuations of Late Glacial climate, the progressive amelioration that marked the establishment of temperate conditions, and the deterioration that occurred during the final phaes of the prehistoric period." (Grahame Clark, Archaeology and Society, P. 144).

(7) वार्व[1] परीक्षण (Varve analysis) ।

(8) आक्सीजन आइसोटोप परीक्षण (Oxygen isotope analysis = isotope oxygen 18) ।

(9) पोटेसियम[2] 40 परीक्षण (Potassium 40 analysis)

(10) आर्कियोमैग्नेटिज्म[3] (Archaeomagnetism)

(11) ऐतिहासिक तिथियों के आधार पर (तिथि) निर्धारण (Range of historical dates)

(12) रेट आफ सेडीमेन्टेशन (Rate of Sedimentation)

(13) ज्योतिष सम्बन्धी साक्ष्य के आधार पर (Astronomical)

(14) भौगोलिक (Geographical Distribution) ।

(15) जानवर अवशेष (remains) के आधार पर तिथि निर्धारण ।

(16) समुद्र सतह परिवर्तन के आधार पर (Changes of Sea-level)

(17) (Climatic fluctuations) आदि प्रणालियों के आधार पर तिथि निर्धारण किया जा सकता है ।

यह सत्य है कि तैथिकी अथवा कालमान (Chronology) पुरातत्व की रीढ़ है। इसके बिना पुरातत्व और इतिहास दोनों ही निर्जीव हो जाते हैं। इस विषय में विज्ञान की अक्षुण्ण देन श्लाघनीय और स्मरणीय है। साथ ही विज्ञान ने प्राचीन स्थानों को ढूँढ़ने में भी काफी योगदान दिया है। संक्षेप में पुरातत्व की सर्वाधिक उन्नति विज्ञान की ही देन है।

1—Accurate time scales can only be obtained from sediments when these are composed of a complete series of well defined varves, such as those deposited in the melt waters of the scandinavian ice—sheet, always assuming that each varve represent a year's sediment (Grahame Clark, Arch and Society, P. 156).

2 - A method which promises to be of value for assigning absolute dates to the major phases of the pleistocene is that devised by Dr. J. Evernden for measuring the rate of decay of potassium 40 in Volcanic rocks, (Ibid, P. 162).

3—"The possibility of dating artifacts of fired clay, like pottery Kilns, depends on the fact that fired clay retains in the form of its remnant magnetism a record of the magnetic field prevailing at the time and place in question when they cooled down. (Ibid.)"

नोट—स्वीडेन के भूगर्भशास्त्री डीगीर (De Geer) ने अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर (वार्व परीक्षण के द्वारा), वहाँ (स्वीडेन) की पोस्ट ग्लेशियल युग की प्रारम्भिक और मानव संचरण की तिथि 6839 ई० पू० निर्धारित की है ।

अध्याय | 11

"पुरातत्व का उद्भव एवं विकास"

पुनर्जागृति काल में मनुष्य की आत्मा ने रूढ़िवादिता को त्यागकर आधुनिक विचारधारा का मार्ग प्रशस्त किया। उसकी प्राचीन चेतना फिर से वैज्ञानिक विचार धारा की ओर ले गयी। प्राचीन वस्तुओं की खोज यूनान तथा रोम से प्रारम्भ हुई 17 वीं और 18 शताब्दी में पुरातत्व का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाने लगा। टामस ब्राउन (1605–82) जो विज्ञान का पिता कहा गया है उसने सर्वप्रथम मृतक स्थानों से प्राप्त खोपड़ियों का अध्ययन किया। वह आधुनिक विचार धारा को मानने वाला था। उसकी धारणा पाषाण, उत्तर पाषाण या लौह युग की तरह न थी। उसने स्वत: लिखा है जो कोई व्यक्ति अतीत के विषय में सोच सकता है। वह धार्मिक धारणा को ठुकराने लगता है, उसके अनुसार ई० पू० 4000 के पहले मनुष्य ही न था। 19 वीं शताब्दी में लोग मिस्र के पिरामिड को देखने जाते थे। वे लोग उस समय की कथाओं में विश्वास मान लेते थे लेकिन सर्वप्रथम रेम रोज द्वितीय ने ई० पू० (1300—1234) में इस ओर ध्यान दिया। इसका पुष्टीकरण पीट्री द्वारा 1898 में मिस्र में उत्खनन से प्राप्त संग्रह से होता है। बेविलिन में मेवोडियन (ई० पू० 555—538) का पतन मंदिरों की मूर्तियों को वहाँ पर एकत्रित और उनकी कला की दृष्टि से निरखते के कारण हुआ। इतिहास के पिता हिरोडोटस, डायडोरस, स्ट्रौवो टिलनी नामक इतिहासकार पुरातत्व की संग्रह की हुई चीजों का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए तत्पर हुए। लेकिन उस समय वैज्ञानिक जिज्ञासा के लिए यूनानी प्रसिद्ध थे। उसी समय प्रसिद्ध दार्शनिक जेनोकोन ने सिसली की पहाड़ियों से पत्थर पर अंकित समुद्री घोघें के अवशेष प्राप्त किये। जिससे यूनानियों की रुचि को बढ़ावा मिला। हिरोडोटस, टिलनी तथा अन्य प्राचीन इतिहासकारों के ग्रन्थों का यूनानियों ने आधुनिक ढंग से अध्ययन प्रारम्भ किया पर यह आधुनिक विचार इंजील (वाइविल) के विचारधारा से अलग न हो सके। लोगों को इसकी सत्यता और इसमें उल्लिखित प्राचीन मनुष्य से सम्बन्वित कई बातों को मानना पड़ा।

अब पुरातत्व केवल प्राचीन कला और उसके अध्ययन तक ही सीमित नहीं रहा। आधुनिक काल में वैज्ञानिक ढंगों से प्राचीन स्थलों का संवेषण, नियमित रूप और उचित निरीक्षण के साथ उत्खनन और प्राप्त वस्तुओं के आधार पर इतिहास लिखने में संलग्न हो गयी है। स्वतन्त्र रूप से पुरातत्वीय विचारधारा का प्रवाह 18 वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। लोगों की रुचि प्राचीन कला और उससे सम्बन्वित उन सभी पदार्थों से थी जिसका प्रादुर्भाव यूनान और रोम से हुआ था। वहाँ से वह यूरोप के अन्य देशों में आयी। इग्लैंड में भी प्राचीन कला से सम्बिन्वित मूर्तियों का पुरातात्विक अध्ययन एवं प्राचीन स्थलों का उत्खनन प्रारम्भ हुआ। कनिंगटन, कोल्ट, होर तथा आब्रे पुरातत्व के अग्र व्यक्ति माने जाते हैं। यह पुरातात्विक अध्ययन लोगों के रुचि को भूगर्भ शास्त्र के अध्ययन की तरफ उन्मुक्त किया। इसके साथ ही साथ आदि मनुष्य के विषय में खोज जारी हुयी। 19 वीं शताब्दी के मध्य युग में पुरातत्व के क्षेत्र में इवेन्स, मरिएट, मासपेरो, श्लीमान, पिट्टरिवर्स और पीट्री के नाम प्रमुख हैं। इस शताब्दी के अन्ततक पाश्चात्य जगत के अतिरिक्त मध्यपूर्व, भारत तथा सुदूर पूर्व के प्राचीन स्थानों की खोज हुई और बहुत से स्थानों का उत्खनन भी किया गया।

मिस्र और उत्खनन कार्य :—सर्व प्रथम नेपेल्स के नेपोलियन वंशीय शासकों ने माइकेल अरडीति की संरक्षता में पामपियाई के प्राचीन नगर में उत्खनन कार्य प्रारम्भ किया जब कि ब्रिटेन में यह कार्य उस समय की चरम सीमा पर था।

एक-एक दिन में कई कूट विखातों का उत्खनन किया जाता था। मेसोपोटामिया में भी उत्खनन का प्रारम्भ प्रारम्भिक स्तर से शुरू हुआ। मिस्र में वेलजोनी नामक पडुआ (इटली) निवासी प्राचीन मृत स्थानों को खोद कर उनके अन्दर प्राप्त चीजों को बेचता था। लुटेरों की भाँति इस तरह के दलों की मिस्र में अधिकता थी। मेसोपोटामिया में भी इसी प्रकार के प्राचीन अवशेषों को नष्ट कर उनके कला पदार्थों और प्राचीन वस्तुओं को बाहर ले जाकर बेचने का कार्य अपने चरम शिखर पर था। इसी के फलस्वरूप लन्दन, पेरिस, टूरेन में मिस्री कला के बहुत से प्रतीक देखने के लिये परिलक्षित होते हैं। लेकिन इस समय के उत्खनन किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित नहीं थे। और इस समय के उत्खनन केवल स्वार्थ-वश किये जाते थे। लेयर्ड, रस्सम, वेलजोनी ने जिस प्रकार और जिस ध्येय को लेकर प्राचीन स्थानों में उत्खनन किया है उसे वैज्ञानिकता का आधार नहीं माना जा सकता है। पर यह मानना पड़ेगा कि उनके प्रयास ने प्राचीन मिश्र और मेसोपोटामिया के इतिहास और पुरातत्व की ओर पाश्चात्य जगत का ध्यान आकर्षित किया।

उत्खनन के वैज्ञानिक रूप को देखकर विद्वानों की रुचि इस ओर उन्मुख हुयी। अब उत्खनन केवल स्वार्थवश न रहकर मानव के प्राचीन कला कृतियों, रहन-सहन आदि बातों की जानकारी के दृष्टि से होने लगा। इसके लिए मनुष्य का सम्पूर्ण इतिहास जानना आवश्यक हो गया था। इसीलिए किसी स्थान का उत्खनन थोड़ा-थोड़ा करके किया जाता था जिससे प्रत्येक युग का पता चल सके। मिस्र में मरिएटी ने अपने ढंग से ८० स्थानों पर बहुत वर्षों तक उत्खनन किया वह भी बहुमूल्य वस्तुओं की खोज में रहा इसके लिये उसने प्राचीन मंदिरों के अवशेषों को नष्ट भी किया। उसने अपने अन्वेषणों को भी प्रकाशित नहीं किया पर उसने भी स्वयं उत्खनन कार्य किया।

१. मध्य पूर्व क्षेत्र :—सर्व प्रथम उत्खनन के सिद्धान्तों का प्रयोग टीले के उत्खनन में किया गया। सर्वप्रथम हिसरलिक नामक टीले का उत्खनन श्लीमन के द्वारा किया गया। उसने इस टीले को बीच से काटकर उसके सात निवसित युगों को दर्शित किया। उत्खनन में स्तर विन्यास का यह प्रयोग प्रथम था जिसमें डैनिश और अन्य विद्वान भी रुचि रखते थे। इस टीले से प्राप्त चीजों का स्तर विन्यास सहित लेखबद्ध किया गया और मुख्य पदार्थों का चित्र बना लिया गया अन्यथा उनको केमरा से चित्रित किया गया। उसने अपने अन्वेषणों को शीघ्र ही प्रकाशित भी किया।

२. पिट्ट-रिवर्स और पीट्री :—१९ वीं शताब्दी में ब्रिटेन के पिट्ट-रिवर्स और पीट्री के नाम उल्लेखनीय हैं। इनका पुरातत्व के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। पिट्ट-रिवर्स द्वारा संग्रहीत प्राचीन वस्तुयें आज भी उसी के नाम पर आक्सफोर्ड के संग्रहालय में संग्रहीत हैं। पहले इसका नाम अगस्ट हेनरी लेवकाक्स था। यह सेना के एक उच्च पद पर कार्य रत था। सैनिक होने के नाते इसकी प्रवृत्ति शास्त्रों के अन्वेषण की तरफ उन्मुख थी। इसलिये इसका अध्ययन प्राचीन संस्कृति के आधुनिक विकास तक किया जाता है। किसी वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसने विभिन्न क्षेत्रों से उसके विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहा। इसीलिये उसने क्रमिक अध्ययन का उपयोग किया जो प्राचीन वस्तुओं तथा विचारों से सम्बन्धित था। इस दिशा में ब्रिटेन के डेनि, स्वीडिश और जान इवेन्स के नाम भी उल्लेखनीय हैं जो कि पुरातत्व के विकास में अपना योग दान दिया है। यह पुरातात्विक विद् वस्तुओं का संग्रह वस्तुओं के क्षेत्र के आधार पर किया। वस्तुओं के संग्रह के साथ ही साथ उस समय के मानव सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश डाला है। उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं की प्रधानता उनके मूल्य पर आधारित न होकर उनके उपयोग पर आधारित थी। उत्खनन में पिट्ट-रिवर्स ने भी नवीन धारणा प्रवाहित की। इसके अनुसार प्राचीन कूट विखातों में केवल सूराख करके नीचे के स्तर में रखी हुई वस्तुओं को ढूँढ़ निकालना ही उद्देश्य न रह गया बल्कि निखात का सम्पूर्ण रूप से उत्खनन करना आवश्यक हो गया। 1880 और 1900 ई० के बीच काल में उसने अपने प्राप्ति भूमि सम्पत्ति में बहुत स्थानों का उत्खनन करवाया। उत्खनन के स्तर तथा उनके चित्रों का भी संकलन किया। उत्खनन से प्राप्त उपयोगी वस्तुओं से उस काल के सामाजिक जीवन के विषय में भी प्रकाश डाला जा सकता है। उसने अपने उत्खनन और उनसे प्राप्त वस्तुओं के आधार पर लिखित अनुसन्धानों

को यथा शीघ्र प्रकाशित किया। लगभग 20 वर्ष के समय में पुरातत्व ने नया मोड़ लिया और अब यह बहुमूल्य पदार्थों का खोजक और पुरातत्वविद् वैज्ञानिक ढंग से मनुष्य की भूमि से नीचे ढकी सभ्यता का उत्खननकर्ता हो गया। उसका मुख्य उद्देश्य साधारण प्राप्त उपयोगी वस्तुओं के आधार पर उनका जीवन चित्रित करना था। इतिहास में जो कमी थी पुरातत्व द्वारा अतीत और वर्तमान के बीच की खाई पाटी जा सकती है। इसीलिये पिट्ट-रिवर्स को वर्तमान पुरातत्व का पिता माना जाता है।

पीट्री का यह उत्खनन कार्य लगभग 70 वर्षों तक अबाध गति से चलता रहा। उसका अध्ययन क्षेत्र मिस्र और फिलिस्तीन थे। यद्यपि यह आरम्भ ब्रिटेन से हुआ था। 1880 में इसका प्रसिद्ध ग्रंथ 'स्टोन हेंज' प्रकाशित हुआ और एक वर्ष बाद वह मिस्र में गया। उसके पहले मिस्र में बेलजोनी तथा मरिएट ने उत्खनन किया था। पीट्री अपने बनाये सिद्धान्तों के आधार पर उत्खनन करता था। उसके कुछ सिद्धान्त निम्नवत् हैं।

(क) सर्वप्रथम तो उत्खनन स्थान की रक्षा करना था जिससे भविष्य के पुरातत्वविद् और दर्शक भी उक्त स्थान को देख सकें और यदि आवश्यक हो तो उस कार्य को आगे बढ़ाये। पूर्व के उत्खननकर्ताओं का ध्येय तो प्राचीन वस्तुओं का अन्वेषण करना ही था और वे लोग स्थान की रक्षा के बजाय उस स्थान को नष्ट कर देते थे।

(ख) उत्खनन के समय स्वयं को उपस्थित रहना आवश्यक समझा उसके अनुसार प्राप्त वस्तुओं का लेख तथा चित्रित प्रदर्शन भी आवश्यक था।

(ग) उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं का अध्ययन तथा उनको प्रकाशित करना था।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का पालन वह अपने उत्खनन में करता था। इसके अतिरिक्त उसने उत्खनन से प्राप्त उन मृत्पात्रादि का भी महत्व समझा जिसको उत्खाता पहले फेंक दिया करते थे। फुर्ट वांगलर नामक एक पुरातात्विकविद् ने पहले ही मृत्कुंडिका के महत्व पर प्रकाश डाला था। पीट्री ने अचित्रित ठीकरो का उपयोग तैथिक क्रम निर्माण में किया। ठीकरों के आधार पर ही पीट्री ने फिलिस्तीन के टेल-इलहेसी के निवसित युगों का निर्माण किया। इन ठीकरों में कुछ ठीकर मिस्र के ठीकरों के समकालीन है। क्योंकि इनकी बनावट मिस्र के ठीकरों के बनावट के समरूप है।

इस प्रकार पीट्री ने यूनान और मिस्र की सभ्यताओं की तिथियों का भी एक दूसरे के साथ मिलान करने का प्रयास किया। उसका अध्ययन ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक क्षेत्रों तक था और उनसे सम्बन्धित सभी वस्तुओं का अध्ययन करना आवश्यक समझा। मनुष्य के सभ्यता के विकास का चित्रण प्राप्त पदार्थों के आधार पर किया जा सकता है। पीट्री ने सर्वप्रथम क्रमिक तैथिक निर्माण (Sequence dating) प्रणाली को अपनाया जिसमें उसने मिस्र के कुछ स्थानों में प्रथम वंश के पहले पदार्थों का अध्ययन किया ठीकरों के आधार पर प्रागैतिहासिक काल का निर्धारण करने और एक क्रमिक तिथिबद्ध परम्परा को स्थापित करना वर्तमान उत्खनन प्रणाली के अन्तर्गत मान्य नहीं है।

(३) **यूनान-रोम क्षेत्र** :—पाम पियाई के अतिरिक्त किसी भी प्राचीन स्थान का उत्खनन 19 वीं शताब्दी के तृतीय भाग तक नहीं हुआ। जिससे प्राचीन विकसित स्थानों के विषय में जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। नवीन प्रणाली को ध्यान में रखते हुए उत्खनन कार्य होने लगा। इसके अन्तर्गत किसी स्थान का प्राचीन स्वरूप, उसका सांस्कृतिक-इतिहास प्रत्येक युग में उस स्थान का उत्थान अथवा पतन और अन्त में उसका आदि स्वरूप चित्रण करने का प्रयास किया जाने लगा। इस ध्येय को ध्यान में रखकर उत्खनन करने वालों में सैफिओवेली और न्यूटन का नाम उल्लेखनीय है। प्रथम पुरातत्वविद ने 1868 में पुनः पामपियाई में उत्खनन आरम्भ किया। उसका उद्देश्य वहाँ से प्राचीन रोमन कला की वस्तुओं की प्राप्ति के अतिरिक्त प्राचीन रोमन नगर के अवशेषों को चित्रित करना था। न्यूटन ने ब्रिटिश संग्रहालय में उत्खनन वस्तुओं का संग्रह शुरू किया और 1858—59 में उसने स्नीडोस में प्राचीन यूनानी नगर का चित्रण

किया । उसनें पहली बार चित्रकला का भी अश्रय लिया यूनान और जर्मन के पुरातत्वविदों ने भी इस दिशा में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। अडोल्फ फुर्ट वांगलर ने चित्रित मृत्पात्रादि के आधार पर तैथिक निर्माण का प्रयास किया ।

भारतीय पुरातत्व में कनिघम युग :—कनिघम ने 19वीं शताब्दी के द्वितीय भाग में जो कुछ भी काम किया वह समय की परम्परा के अनुसार था। सर्व प्रथम तो चीनी यात्रियों के वृत्तान्तों में वर्णित प्राचीन स्थानों को ढूढ़ निकालने का प्रयास किया और इसमें ये सफल भी हुये। प्राचीन स्थानों के अन्वेषण की दृष्टि से यह कार्य महत्पू" और सराहनीय है। कनिघम एक भारतीय पुरातत्वविद् थे। २८ वर्ष की आयु में वे भारतीय सेना में भरती हुए। प्रिंसिप, जिसने अशोक के लेखों को पढ़ा था की पेरणा से इनकी रुचि भारतीय इतिहास और प्राचीन सिक्कों में हुयी। 1837 में इन्होंने सारनाथ जाकर उत्खनन कराया। 1848 ई० काश्मीर और लद्दाख में रहकर वहाँ के मदिरों पर एक लेख लिखा। 1850 में साँची जाकर उत्खनन किया और एक ग्रन्थ भी लिखा। 1863 ई० में इन्हीं के प्रयास के फलस्वरूप पुरातत्व विभाग की स्थापना हुयी। जिसके अध्यक्ष स्वतः थे। 32 वर्ष के लम्बे काल में उन्होंने भारत के प्राचीन स्थानों का भ्रमण किया और 23 रिपोर्टों में इसका विवरण दिया जो आज भी भारतीय पुरातत्व के अग्र और मान्य ग्रंथ है। उत्खनन क्षेत्र में कनिघम ने प्राचीन स्तूपों को ऊपर नीचे की ओर सुराख के रूप में खोदकर रखी बुद्ध की अस्थियाँ निकाली। कुछ स्तूपों को बीच से भी काटा गया। यह वर्तमान दृष्टिकोण से ठीक नहीं है क्योंकि इसमें प्राचीन पदार्थ भले ही मिल जाय पर तैक्षिक-क्रम नष्ट हो जाता है। हड़प्पा की खुदाई में कनिघम को कुछ ऐसी मोहरें प्राप्त हुयी जो उसके उत्खनन में नहीं प्राप्त हुयी थी। ये मोहरे ऐतिहासिक काल के पहले की है। उसने प्राचीन स्थानों, मन्दिरों और पत्थर काटकर बने बौद्ध मन्दिरों और विहारों का संरक्षण किया। फरग्यूसन का 'भारतीय कलात्मक प्रतीकों का इतिहास' तथा 'बौद्ध गुफा मन्दिर' आदि ग्रन्थ कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस काल में उत्खनन के सिद्धान्तों पर जोर दिया जाता था जैसे स्थान का संरक्षण, प्राचीन लेखों का संकलन, संपादन और प्रकाशन तथा सिक्कों का क्रमिक अध्ययन आदि। पुरातत्व इतिहास का ही एक अंग था। पुरातत्वविद इतिहास की प्रेरणा पर और इतिहास ही के लिये प्राचीन स्थानों को ढूढ़ने तथा उत्खनन करके वहाँ से प्राप्त वस्तुओं के संग्रह में जुट गये। कनिघम का प्रयास सफल रहा और उसके जाने के 18 वर्ष बाद पुरातत्व को केन्द्रीय भारतीय शासन के अन्तर्गत विशेष स्थान मिला।

19वीं शताब्दी की देन :—विभिन्न क्षेत्रों की सभ्यताओं के उत्खनन के बाद यह विदित हो गया कि सभ्यताओं के उत्कर्ष के बाद पतन का भी स्थान स्वाभाविक है। इसलिये मनुष्य के इतिहास कहानी में उदय और उत्थान के साथ-साथ अस्त और पतन का भी स्थान है। इस युग में पुरातत्व के अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं के समीकरण, उनके शब्दों और व्याकरण में समानता खोजने का प्रयास जिस ओर सर विलियम जान्स ने संकेत किया था पुरातत्ववित् के अध्ययन-क्षेत्र को विस्तृत करने लगी। इस युग में विभिन्न देशों से प्राप्त पदार्थों की तुलना भी की जाने लगी। पुरातत्ववित् और इतिहासज्ञ एक दूसरे के निकट होते हुये एक नये मार्ग की ओर मुड़ने लगे। इस शताब्दी में भूगर्भ शास्त्र को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया; समय आने वाला ही था जबकि भूतैथिकी तथा तुषारावरोहण उसके अध्ययन के विषय बनें। पुरातत्व विज्ञान का रूप लेना चाहता था। इतिहास और कला जिनसे पुरातत्व का जन्म हुआ अपनी परम्परा लिये बैठे रहें। 20 वीं शताब्दी का युग एक नवीन भावना प्रदर्शित करता है। इसमें भूतैथिकी (Geochronology) तथा तुषाराव रोहण (Glaciation) पर ध्यान दिया जाने लगा। जिससे मनुष्य के जीवन का चित्रण आदि काल से लेकर वर्तमान युग तक किया जा सके इस प्रकार हम देखते हैं कि 19 वीं शताब्दी में पुरातत्व ने अपना स्थान बना लिया था। पर अभी यह विज्ञान के स्तर को नहीं पहुँच सका था जिसके अपने सिद्धान्त और नियन्त्रण रहते हैं। श्लीमन, पिटरिवर्स और पीट्री ने इसे 18 वीं शताब्दी की प्राचीन वस्तुओं की खोज विचारधारा और उत्खनन के ध्येय से आगे बढ़ाया। पुरातत्व वित्जन इतिहास में रुचि रखने लगा। इस काल में यह अभी पूर्णतया स्वतन्त्र प्रारूप के रूप में नहीं था।

20 वीं शताब्दी में पुरातत्व का विकास :—सर्वप्रथम भारतवर्ष में लार्ड कर्जन ने 1902 में पुरातत्व विभाग की नियुक्ति की तथा जॉन मार्शल को उसका अध्यक्ष नियुक्त किया। जान मार्शल ने भारत के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों की खुदाई करके भारतीय संस्कृति की प्राचीनता को विश्व के सामने उपस्थित कर दिया। 1922 की मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदायी में प्राप्त नगरीय सिन्धु सभ्यता आज विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता कहलाती है। सिन्धु सभ्यता का विकास पूर्वी पंजाब के रूपर से लेकर दक्षिण में अहमदाबाद के लोथाल तथा काठियावाड़ के रंगपुर आदि स्थानों तक विस्तृत था। जॉन मार्शल के निर्देशन में अनेक ऐतिहासिक नगरों के अवशेषों का उत्खनन कार्य किया गया जिनमें प्रमुख नगर तक्षशिला, पाटलिपुत्र सारनाथ, श्रावस्ती, वैशाली चाटसड्डा (प्राचीन पुष्कलावती), भीटा, साँची, आदि प्रमुख थे। 20 वीं शताब्दी में पुरातत्व के विकास के लिये सम्पूर्ण विश्व में उन्नतिशील कार्य किये गये। साथ ही विश्व में अधिक संख्या में अनुदान दिये गये। पुरातत्व के विकास के लिये विश्व के विद्वानों ने दूसरे देशों में जाकर वैज्ञानिक ढंग से उत्खनन कार्य करवाया। उत्खनन के क्षेत्र में विभिन्न नवीन प्रणालियों का प्रयोग किया गया। पुरातत्व के विकास में सर मार्टीमर ह्वीलर तथा सर ल्यूनर्ड वूली का नाम उल्लेखनीय है। ह्वीलर महोदय (1944-48) भारतीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पर कार्य करते हुये अनेक नवीन प्रणालियों को जन्म दिया।

भारतीय पुरातत्व के अन्तर्गत पाषाण काल और प्रागैतिहासिक काल के भी अवशेष प्राप्त किये गये हैं जिससे पुरातत्व का अत्यधिक विकास हुआ। आज पुरातत्व के विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में पुरातत्व की उन्नति के लिये अनेक नियमों का प्रतिपादन किया गया है। पुरातत्व के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाने लगा है। उत्खनन में प्राप्त अवशेषों को बाह्य देशों में ले जाना वर्जित कर दिया गया है।

●

अध्याय | 12

पदार्थों की रासायनिक प्रयोग द्वारा सुरक्षा

पृथ्वी के गर्भ में पड़े हुए पदार्थ अपने वास्तविक स्वरूप से विरहित हो जाते हैं। इसका प्रमुख कारण काल, गति, मिट्टी की शीतोष्णता और उनका सलोनापन है। इतिहास निर्माण के दृष्टिकोण से उनको रासायनिक और अरासायनिक प्रयोगों द्वारा सुरक्षित रखना उत्खाता और क्षेत्रीय रसायन-शास्त्री का प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है। इसलिये उत्खाता को उत्खनन विधि के अतिरिक्त रसायन-शास्त्री का भी ज्ञान होना चाहिये। साथ ही उत्खनन क्षेत्र में एक प्रवीण रसायन-शास्त्रज्ञ की भी व्यवस्था होनी चाहिये। इसका प्रमुख कर्त्तव्य अत्यन्त जर्जरित अवस्था में उपलब्ध हुए पदार्थों को छाँटकर स्तरानुसार अलग रखना, तत्पश्चात उनको स्वच्छ जल तथा रासायनिक प्रयोग द्वारा सुरक्षित रखना, होना चाहिये। उत्खनन क्षेत्र में थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोटी-छोटी रासायन शालाओं की भी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे अत्यन्त भग्नप्राय पदार्थों का वहीं पर आरक्षण हो सके, क्योंकि भूमि से वस्तुयें निकलते ही धूप और हवा से शीघ्र ही टूटने लगती हैं अतः क्षेत्रीय रसायन शास्त्री का यह प्रमुख कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसी समय उन पर कोई लेप लगाकर तथा क्रमानुसार नोट कर किसी बड़े शाला के रसायनशास्त्रज्ञ के पास भेज दे।

पदार्थों के आरक्षण में जिन विभिन्न रासायनिक या अरासायनिक उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है, संक्षेप में उनका निम्न ढंग से उल्लेख किया जा रहा है। इनकी विस्तृत सूची सर मार्टीमर ह्वीलर के आर्कियोलाजी फ्राम दी अर्थ नामक पुस्तक के पृष्ठ 195-196 और 197 पर उल्लिखित है '

डिस्टिल्ड वाटर (Distilled water)
निट्रिक एसिड (Nitric acid)
हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochloric acid)
असीटोन (Acetone)
अमिल-असीटेट (Amyl-acetate)
सिलवर नाइट्रेट (Silver nitrate)
सिट्रिक एसिड (Citric acid)
सल्फ्यूरिक एसिड (Sulphuric acid)
एसेटिक एसिड (Acetic acid)
अमोनिया (Ammonia)
कास्टिक सोडा (Caustic Soda)
सेलुलाइड कटिंग्स (Celluloid Cuttings)
शेलक (Shellac), बेडक्रिल 122 x (Bedacryl)
टोलुअल (Toluol), टीपोल (Teepol)
सोडियम सेस्क्यूकार्बोनेट (Sodium Sesquicarbonate),
पोलिविनिल एसीटेट (Polyvinyl acetate),
मेथीलेटेड स्पिरिट या अलकोहल (Methylated Spirit or alcohol)
पेरिस प्लास्टर (Plaster of Paris),
ग्रनुलेटेड जिंक (Granulated Zinc)
ग्राफिट स्लेब (Graphite Slab),

ताम्र तार (Copper wire), ताम्र और पीतल राड (Copper and Brass Rods), बैट्रीज या ट्रांसफार्मर (Batteries or transformer), ग्लास या पाट्री टैंक (Glass and Pottery tank), ग्लास, थालियाँ और बीकर, खुरचने की छूरी, मापन ग्लास, टेस्ट-ट्यूबें, ग्लास-बोतलें, चम्मच, चाकू, तार के ब्रुश, (स्पात और पीतल), नेल-ब्रुश, टूथ-ब्रुश (लगभग एक इंच और दो इंच के), इमरी पेपर (Emery Paper,) सेन्ड-बाथ (Sand-bath), वायर-वूल (wire-wool) साबुन, वक्स (wax) क्षुद्रटग लेबैन्स (Small tag labels), सेकिंग (Sacking) लौह राड और तार, सेन्डपेपर, गर्मी का प्रबन्ध और परफिन वैक्स (Paraffin wax) आदि।

अब हम यहाँ पर उन पदार्थों का उल्लेख कर रहे हैं जिनके रसायन का उपयोग आवश्यक है।

1—पथरीले (Siliceous) और चूने (Calcarious) के पदार्थ यथा—मृद्‌भाण्ड या मिट्टी के खिलौने (Pottery or terracotta), शीशा, खड़िया, चूना, पत्थर, फेयांस, खनिज और मीना आदि।

2—धातु के पदार्थ—यथा लोहा, चाँदी, सोना और ताँबा तथा मिश्रित पदार्थ आदि।

3—लकड़ी, कागज, रेशम, कपड़ा, खाल, हड्डी, सींग, चमड़ा और हाथी-दाँत के उपकरण आदि।

मृद्‌भाण्ड, पत्थर और फेयांस का रासायनिक प्रयोग—आधुनिक उत्खनन के असंख्य मृद्‌भाण्ड, पत्थर और फेयांस

के उपकरण उपलब्ध हुए हैं। इनमें से अधिकांश उपकरण अभी भी विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। पृथ्वी के अन्दर अधिक दिनों तक पड़े रहने के कारण इनमें सलोनापन आ जाता है और कुछ अत्यन्त ही जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं अत: इनको सुरक्षित रखना अनिवार्य हो जाता है। कभी-कभी तो उन पदार्थों, जिनपर नमक का प्रभाव अधिक पड़ा है, को केवल साफ पानी से कई बार धोने से ही काम चल जाता है, पर खास तौर से उन पर रसायन पदार्थों का उपयोग आवश्यक है।

सर्वप्रथम रसायन शास्त्री के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह पदार्थों पर आये हुए नमक के प्रभाव को दूर करे जिसके कारण उनके नष्ट होने की सम्भावना है। इसके लिये सर्वोत्तम विधि यह है कि पदार्थ को पानी में डाल दें जिससे नमक का प्रभाव जाता रहे। ऐसा करने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि कहीं पदार्थ पानी में डालने से नष्ट तो नहीं हो जायगा।

पदार्थों को जल में डालकर उनके नमक के प्रभाव को दूर करने की प्रणाली को (स्टीपिंग Steeping Process) कहते हैं। छोटे-छोटे पदार्थों को किसी भी गहरे पात्र में रखकर साफ किया जा सकता है। (SP. in deep glass or Procclain Vessels), नमक के प्रभाव को दूर करने के लिए सर्वप्रथम इनमें स्वच्छ जल भर दिया जाता है। बीच में लकड़ी की एक जाली रख दी जाती है। पदार्थ पर पक्की काली स्याही से नम्बरादि डालकर जाली पर रख दिया जाता है। पदार्थ पूर्णतया पानी में डूबा रहना चाहिए ताकि उसका समस्त सलोनापन दूर हो सके। पानी में लेशमात्र भी नमक का असर नहीं होना चाहिए साथ ही पानी में डालने से पहले पदार्थ का पूर्ण विवरण लिख लेना बहुत सी आवश्यक हो जाता है। पानी को (Steeping water) प्रथम सप्ताह में प्रत्येक दिन, द्वितीय में दो बार और फिर सप्ताह में एक बार पानी बदल देना चाहिये। यह क्रिया तब तक जारी रखना चाहिये जब तक नमक का प्रभाव पूर्णतया दूर न हो जाय।* थोड़ा सूख जाने के बाद, उन पर लगी मिट्टी को चाकू या ब्रुश की सहायता से साफ करना चाहिए। जिन पदार्थों पर गहरा चूना जम गया है उन पर 3 प्रतिशत नमक का तेजाब (muriatic acid) लगा देना चाहिये या आवश्यकतानुसार उसी के घोल में पदार्थ को भिगो देना चाहिये ताकि उसका प्रभाव पूर्णतया दूर हो जाय। पदार्थों पर जमे खड़िया मिट्टी के अंश तो पानी में भीगने पर स्वत: ही गिर जाते हैं अन्यथा उन्हें चाकू से खुरचकर हटा देना चाहिये। प्रत्येक ट्यूबों में घटित क्रमिक क्रिया का स्पष्ट उल्लेख कर लेना चाहिये ताकि पदार्थों के परीक्षण में सुलभता रहे। पदार्थों को औजारों से साफ करने के बाद उन्हें पुन: स्वच्छ जल से धोना चाहिये, जिससे वे पूर्णतया साफ हो जायँ। अब हम नीचे उन पदार्थों के रासायनिक प्रयोग तथा उनकी परीक्षण विधि पर प्रकाश डालेंगे।

पदार्थ के धोये हुए पानी में सलोनापन के परीक्षण के लिए सिलवर नाइट्रेट घोल को उपयोग में लाना चाहिये। यह घोल 5 ग्राम सिलवर नाइट्रेट के टुकड़े 500 सी० सी० पानी और 10 सी० सी० तेज तेजाब मिलाकर तैयार किया जाता है। इसका परीक्षण निम्न विधि से किया जाता है। एक ही आकार के शीशे के दो ट्यूबों में बराबर मात्रा में—एक में स्वच्छ पानी तथा दूसरे में पदार्थ का साफ किया पानी डाल देना चाहिए और उसमें सिल्वर नाइट्रेट घोल (शोरे के अम्बल=मद्यसार के घोल) की 10 बूँदे अलग-अलग डाल देनी चाहिए। तत्पश्चात् दोनों ट्यूबों को सावधानी से हिलाना चाहिए। सफेद जमी हुई भाग या दूधियापन (milkiness) इस बात का संकेत करेगी कि अभी पदार्थों में क्षार मौजूद है। यह दूधियापन स्वच्छ पानी में कम और नमकीले पानी में अधिक पड़ेगा। इसकी मात्रा को कम करने के लिए पदार्थों को पानी में बार-बार धोते रहना चाहिए, जब तक कि स्वच्छ पानी में उसी प्रकार दूधियापन न आ जावे। इस प्रयोग से यह

---

*नोट—हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो जैसे नमकीले टीलों पर स्वच्छ पानी का मिलना दुर्लभ रहता है अत: वहाँ पर पुरातात्विक रासायनिक के द्वारा परीक्षण किए हुए शुद्ध जल की व्यवस्था बाहर से कर लेनी चाहिए ताकि उपलब्ध उपकरणों का समुचित सदुपयोग हो सके।

प्रतीत होगा कि पदार्थ नमक के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हो गया है । अन्त में यदि पदार्थों में क्षार (Sulphate) की मात्रा अधिक हो तो 5 प्रतिशत 'बेरियम क्लोराइड' (Barium Chloride) के घोले से जो हाइड्रोक्लोरिक एसिड (hydrochloric acid) से खट्टा हो गया हो, फिर परीक्षण करना चाहिए । पदार्थों पर सफेद जमी हुई भाप इस बात का संकेत करेगी कि अभी भी क्षार की मात्रा मौजूद है । इसके पश्चात् पदार्थों को खूब साफ पानी से धोकर धूप से सुखाना चाहिए । बड़े पदार्थों को खुली हुई वायु में तथा छोटे उपकरणों को उष्ण वातावरण में अर्थात् लगभग 80-100 तापक्रम में सुखाना चाहिए । छोटे पदार्थों को गर्म चूल्हे पर भी सुखाया जा सकता है । कच्ची मिट्टी के पदार्थ पानी का प्रभाव सहन नहीं कर सकते हैं और उनके पानी डालने पर घुलने की आशंका रहती है अतः उन्हें पहले साये में खूब सुखा लेना चाहिए तत्पश्चात् उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप तथा गर्म मोम को ब्रुश से लगा देना चाहिए जिससे वे पानी में डालने पर घुल व टूट न सकें, जो पदार्थ खराब कच्ची मिट्टी के बने हुए हैं, वे निश्चय ही पानी में डालने पर घुल व व्यर्थ हो जायेंगे अतः उनको पहले पका लेना चाहिए । पदार्थों पर लगे हुए रंग को कायम रखने के लिए उनके उतने स्थान पर 5 प्रतिशत विनायल एसीटेट (Vinyl acetate) का लेप लगाकर तब पानी में डालना चाहिए । टूटे हुए पदार्थों को बड़ी सावधानी से जोड़ना चाहिये जिससे कि उनका अन्य भाग न टूट सके ।

बड़े-बड़े पत्थर के पदार्थ भी पृथ्वी के गर्भ में बहुत समय तक पड़े रहने के कारण अम्ल (Acids) के प्रभाव से ग्रसित हो जाते हैं। स्टीपिंग विधि से इनके सलोनेपन को हटाने में बहुत समय लग जाता है । इसके लिए कागज के गुद्दे (Paper-Pulp) का प्रयोग करना चाहिए। यही सलोनापन दूर करने की सबसे सुगम विधि है । यह निम्न विधि से तैयार किया जाता है । कागज के छोटे-छोटे टुकड़े करके, एक ट्यूब में गर्म पानी डालकर उसी में 24 घण्टे तक पड़े रहने देना चाहिए । जब खूब गल जाय तब लकड़ी से खूब कूट कर उनका पतला गुद्दा तैयार कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् उसी का ½ इंच का लेप पत्थर पर लगा देना चाहिए । जब यह सूख जाय तब उन पर इसी का दूसरा लेप लगा देना चाहिए। यह क्रिया तब तक जारी रखना चाहिए जब तक पदार्थ से सलोनापन दूर न हो जाय । इसका परीक्षण करने के लिए कि पदार्थ सलोनेपन से मुक्त हो गया है कि नहीं, शोरे के अम्ल और मद्यसार के घोल को उपयोग में लाना चाहिए । जब पदार्थ नमक के प्रभाव से मुक्त हो जाय तब उन्हें स्वच्छ जल से धोकर सुखाना चाहिए ।

चूना, संगमरमर और अन्य पत्थर के छोटे-छोटे पदार्थ भी अम्ल के प्रभाव से ग्रसित होते हैं । खड़िया मिट्टी और अलाबस्तर (Gypsum and alabaster) पानी में घुलनशील होते हैं । अतः उन्हें स्टीपिंग विधि से घुलने से बचाया जा सकता है । इसके लिये पानी में चूने का तत्व और क्षार (Water saturated with Calcium sulphate) के घोल को मिलाकर उपयोग में लाना चाहिए । इस विधि से सलोनापन पूर्णतया दूर हो जाता है ।

मृद्माण्डों को जोड़ने के लिए लाख और सरेस का प्रयोग किया जाता है । लाख को साफ की हुई स्पिरिट में घोलकर उसे टूटे हुए किनारों पर लगाकर जोड़ देना चाहिए । स्थानों को जोड़ने से पहिले उनकी सफाई कर देना चाहिये । लाख का घोल अत्यन्त ठोस बनाना चाहिए । इसके अतिरिक्त विनायल एसीटेट (Vinyl acetate) के घोल से भी टूटे हुए किनारों को जोड़ा जा सकता है । यह घोल विनायल एसीटेट की राल और स्पिरिट बराबर मात्रा में मिलाकर बना लिया जाता है । बड़े पदार्थों को जोड़ने में यह घोल सीमेंट की भाँति कार्य करता है । बड़े से बड़े पदार्थों को भी इस घोल

नोट—स्वच्छ पानी में दूषियापन की बहुत ही हल्की मात्रा होती है जो देखने में नहीं प्रतीत होती है । इसका रासायनिक विधि से परीक्षण किया जा सकता है ।

1—Barium chloride 5 percent, distilled water 500 C. C. and Hydrochloric acid 20 C. C.

से जोड़ा जा सकता है। पत्थर के पदार्थों को जोड़ने के लिए भी लाख और विनायल एसीटेट का प्रयोग किया जाता है। बड़े पत्थर के पदार्थों को पत्थर का चूरा (Calined magnesia) और मैगनेशियम क्लोराइड (Magnesium Chloride) को मिलाकर जोड़ा जा सकता है। यह लेप भी एक प्रकार की सीमेंट का काम देता है। टूटे हुए भाग को इस लेप से दो तीन दिन के अन्दर में बड़ी आसानी से जोड़ा जा सकता है।

धातुओं पर रासायनिक प्रयोग—धातुओं पर रासायनिक प्रयोग करना बहुत कठिन होता है अतः इसके लिए एक कुशल व्यक्ति का होना आवश्यक है। अब हम नीचे क्रमानुसार धातुओं के रासायनिक प्रयोग पर प्रकाश डालेंगे।

लोहा (Iron)[1] अधिकांश समय तक मिट्टी के गर्भ में पड़े रहने के कारण इनका अधिकांश भाग जीर्ण तथा उसमें जंग लग जाता है। यह जंग इनकी चुम्बक की शक्ति को खतम कर इन्हें खोखला बना देता है। अतः प्राप्त पदार्थ को सुरक्षित रूप देने के लिए उन पर रासायनिक प्रयोग अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इनको एल्क्ट्रोलिटिक रिडक्शन (Electrolytic reduction) से साफ किया जा सकता है। इसमें पदार्थ को धातु की जिंक शीट से ढँक (जंग या मोर्चा लगे हुए स्थान पर) दिया जाता है और उसे 5 प्रतिशत कास्टिक सोडा के घोल से साफ किया जाता है। विशेषकर यह घोल शीशे के बर्तन में तैयार किया जाता है। लगभग छः घण्टे के बाद पदार्थ जिंक के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त हो जाता है और उसको थोड़ी देर के लिए 2 प्रतिशत डाइल्यूट सल्फ्यूरिक एसिड में रख दिया जाता है ताकि पदार्थ पर लगे हुए जिंक के निशान पूर्णतया समाप्त हो जायँ। तत्पश्चात् उनको तब तक धोना चाहिए जब तक वे क्लोराइड से रहित न हो जायँ। अन्त में सुखाकर उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट या बेकलाइट वार्निश का लेप लगा देना चाहिए। कुछ लौह धातु के पदार्थ, जो अत्यन्त ही जर्जरित हो जाते हैं उनको एल्क्ट्रोलिटिक रिडक्शन से नहीं साफ किया जा सकता है। उनको 5 प्रतिशत कास्टिक सोडा के घोल में लगभग एक सप्ताह तक के लिए डाल देना चाहिए, और उसके पश्चात् स्वच्छ जल से साफ करना चाहिए। कार्बोरेन्डम फाइल और ब्लाक की सहायता से पदार्थ पर जमे हुए जिन्क के धब्बों को दूर कर देना चाहिए।"[2] उसके बाद बेडक्राइल या पोलि विनाइल एसीटेट (Beda Cryl or Polyvinyl acetate or bakelite varnish) या बेकलाइट वार्निश का लेप लगा दिया जाता है। बिजली की सहायता से इन पदार्थों का रक्षण बड़ी सुगमता से हो जाता है। ऐसे पदार्थों की सर्वाधिक सुरक्षा रसायनशाला में ही हो सकती है। जहाँ पर बिजली का पूर्णतया प्रबन्ध होता है। अतः उन्हें शीघ्र ही वहाँ पर भेज देना चाहिए।

चाँदी—(ताम्र मिश्रित तथा शुद्ध चाँदी के सिक्के)—चाँदी और चाँदी से मिश्रित पदार्थों को जिनमें ताम्र की

1—**Note** :—Objects of Iron can be cleaned by electrolytic reduction. This can be carried out readily by wrapping the objects with stripe of zinc sheet and immersing in 5 percent caustic soda solution contained in a glass vessel. After about six hours they freed from the zinc and placed in 2 percent, dilute sulphuric acid for a few minutes to dissolve the adhering Zinc oxides. Washing well until free from chlorides and dry in an oven at 80°. C. Finally they should be coated with bakelite varnish or 10 percent Vinyl acetate.

2—Note :—Iron, objects in an advanced state of oxidation cannot with stand the electrolytic reduction. They should be kept in 5 percent caustic soda solution for about a week in order to decompose the injurious chlorides, followed by thorough washing with plain water until the washing are free from chlorine. All the super fluous incrustations or oxides should be ground off carefully by the aid of carborundum files and blocks, but surface will have to be finished properly in the laboratory wherein electrically powered lathe fitted with a flexible shafting and small grinding wheels should be available.

मात्रा मिली हुई है, 3 प्रतिशत गन्धक के तेजाब से तब तक धोना चाहिए जब तक ताम्र के लाल चिन्ह साफ न हो जायँ। तत्पश्चात् उन सिक्कों को ब्रुश और जल की सहायता से खूब साफ करना चाहिए। शुद्ध चाँदी के सिक्कों या अन्य तत् धातु निर्मित पदार्थों को डाइल्यूट अमोनिया या डाइलूट फार्मिक एसिड से साफ किया जा सकता है या उनको जिंक सीट से ढँक कर, एसटिक एसिड की कुछ बूँदों से अम्लीभूत किए हुए जल में डालकर भी साफ किये जा सकते हैं। अन्त में शुद्ध जल से पदार्थों की सफाई अवश्य करनी चाहिए।

सोना—सोने के सिक्कों पर रासायनिक प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जिन सिक्कों पर धब्बे पड़ जाते हैं या इसी तरह की कोई अन्य खराबी आ जाती है तब उन्हें स्ट्रांग हाइड्रोक्लोरिक एसिड से साफ किया जाता है अथवा डेटरजेन्ट (detergent) घोल में उन्हें उबाल लिया जाता है।

ताँबा—ताम्र और उससे मिश्रित पदार्थों को साफ करने के लिये 1 अंश पर तार अम्ल (Tartaric acid), 1 अंश कास्टिक सोड़ा और 10 अंश पानी के घोल का प्रयोग करना चाहिये। पदार्थ को तब तक पानी में रहने देना चाहिये जब तक कि उस पर का हरापन दूर न हो जाय। तत्पश्चात् पानी से खूब घोकर उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट घोल के लेप को लगा देना चाहिये। सर मार्टीमर ह्वीलर ने अपनी पुस्तक आर्कियोलाजी फ्राम दि अर्थ के पृ० 198 पर ताम्र तथा ताम्र मिश्रित धातुओं की रासायनिक प्रयोग विधि पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला है। जो निम्नलिखित रूप में उद्धृत है।[2]

शीशा—आक्सीडाइज्ड शीशा एलक्ट्रोलिटिक रेडक्शन भी साफ किया जा सकता है; लेकिन इसकी सफाई ताजे उबाले हुए पानी (freshly boiled water) में करनी चाहिये अथवा शीशे के पदार्थों को सर्वप्रथम कुछ घंटों के लिए कास्टिक सोडा के घोल में, उसके बाद 2 प्रतिशत गंधक के घोल में डालना चाहिये और जस्ते की मात्रा निकलते तक उसी में पड़े रहने देना चाहिये। जब जस्ते की मात्रा समाप्त हो जाय तब गर्म पानी से घोकर और खूब सुखाकर उन पर 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप लगा देना चाहिये।

लकड़ी—लकड़ी के पदार्थ पृथ्वी की शीतोष्णता के कारण गल जाते हैं और उत्खनन के पश्चात् हवा और धूप लगते ही वे सूखकर टूटने और अस्त व्यस्त होने लगते हैं अतः बड़ी सावधानी से उन्हें आरक्षित करना चाहिये। नमकीले

※2—"If the electrolytic method is considered unsafe, copper or its alloys may be cleaned in a mixture of I part tartric acid, I part of caustic soda, and 10 parts of water. The objects should be kept in the mixture until all the green incrustations have been dissolved away leaving the liver-red core bihind. They are then throughly washed in water and finally coated with bedacryl or polyvinyl acetate. An alternative treatment is : (i) Citric acid, and pickling in 50 percent sulphuric acid to remove any red oxide; (ii) Neutralize with ammonia or any alkali after the acid treatment; (iii) Wash in distilled water (iv) Carry out the silver nitrate test with the last wash-water, (v) Dry in alcohol and (vi) Coat with bedacryll[1] or polyvinyl acetate: Completely oxidized copper coins should at the outset be left in a 10 percent sodium metaphosphate solution untill free from calcareous matter sometimes this is sufficient to reveal the inscriptionl if not, they should be treated with the above mentioned tartrate mixture diluted to half strength...when a coin is immersed for cleaning, its label must be securely attached to the wire whereby it is suspended."

1—बेडक्राइल और पोलिविनायल एसीटेट का लेप भी लगाया जा सकता है।

क्षेत्रों से उपलब्ध हुए पदार्थों को स्वच्छ पानी (salt free water) से धोना चाहिये या सलोनेपन को दूर करने के लिये पतले कागज की गुद्दी के लेप (liquid paper pulp) का प्रयोग करना चाहिये। साधारणतया पदार्थों को टूटने से बचाने के लिये उन्हें गहरे बुरादे की परत में रखना चाहिये जहाँ पर उनकी हवा और धूप के आक्रमण से रक्षा हो सके। पदार्थों की रक्षा हेतु उन्हें मास (moss), अखबार (newspaper) वेटसा डस्ट (wetsaw dust) की गहरी परतों में भी रखा जा सकता है।

"Sometimes the wood can be slowly dried and the moisture replaced by glycerine, which is retained by a skin of 10 percent polyvinyl acetate or shellac in alcohol."

(Dr. Wheeler, Arch. from the Earth, P, 199).

पदार्थों पर अन्त में 10 प्रतिशत नियाल एसीटेट का लेप लगा देना चाहिये। जमीन में पड़े रहने के कारण लकड़ी में दीमक पकड़ लेते हैं अत: उन्हें दूर करने के लिये अजवायन का सत या कोयले का धुआँ उपयोग में लाना चाहिये। उत्खाता के लिये यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि वह सदैव इस बात का ध्यान रखे कि लकड़ी पर किसी भी प्रकार हवा का प्रकोप न हो सके। पदार्थों को शीघ्र ही रसायनशाला भेज देना चाहिये जहाँ पर उनका आरक्षण हो सके।

हड्डी और दांत के पदार्थ—ये पदार्थ अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में उपलब्ध होने के कारण सुखाने पर टूटने लगते हैं। विशेषकर जहाँ पर मिट्टी में सलोनापन अधिक है वहाँ पर ये एक दो दिन में ही चूर्ण-चूर्ण हो जाते हैं। सलोनापन दूर करने से पहले इन पदार्थों को तागों से अवश्य बाँध देना चाहिए जिससे वे टूट न सकें और तत्पश्चात् उन्हें स्वच्छ जल से साफ कर चूल्हे या धूप में सुखा लेना चाहिये। रात भर सूखने के बाद बँधे हुए तागे खोल लेने चाहिये और तागे के स्थान पर राल लगा देना चाहिये। अन्त में 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप लगा देना चाहिये। शव स्थानों में उत्खनन करते समय बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। शव अवशेष को उठाने से पहले उनका चित्र लेना अनिवार्य होता है जिससे उसकी आकृति का पूरा विवरण लिखा जा सके जो अस्थि अवशेष अत्यन्त जीर्ण होते हैं उनमें ताकत लाने के लिये 10 प्रतिशत विनायल एसीटेट का लेप अथवा हल्की लाख का लेप लगा देना चाहिये। अस्थि अवशेषों को उठाने में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये। उन्हें कागज के टुकडे अथवा हल्के वस्त्र के टुकड़े से लपेट कर उठाना चाहिये जिससे वे टूट न सकें। हड्डियों के भी सलोनापन दूर करने के लिए कागज की लुब्दी का प्रयोग किया जाता है। हल्के हाथी दांत के पदार्थ पर पेरिस का प्लस्तर लगा देना चाहिये और इससे पूर्व एक लकड़ी की डंडी बाँध देनी चाहिये जिससे पदार्थ को इधर-उधर हटाने में सरलता रहे।

कपड़ा तथा कागज—कपड़े तथा कागजों का सलोनापन दूर करने के लिये उन्हें केवल गीले सोखतों (Wet-blotting) में ही रख देना चाहिये। धीरे-धीरे ये सोख्ते इनके सलोनेपन को सोख लेते हैं। इसके पश्चात् मुलायम ब्रुश से मिट्टी हटाकर उन्हें सुखा लेना चाहिये।

भोज-पत्र—भोज-पत्र पर से सलोनापन दूर करने के लिए भाप को उपयोग में लाना चाहिये। किसी खौलते

1—"Bones must be carefully and lightly brushed clean, and can be painted or sprayed before removal with polyvinyl acetate diluted with toluence or methylated spirits or shellac diluted with methylated spirits or alcohal. If the bones can be removcd but are still fragile, they can be soaked for 3-4 days in a tank containing bedacryl or polyvinyl acetate suitably diluted with toluol with an air-space under the lid. They should then be laid out on a wire grid, otherwise they will stick to everything. (Wheeler, P. 199).

हुए पानी पर एक तार के जाल पर दो तीन मिनट के लिए रख देना चाहिये। भोज-पत्र जब भाप से गीला हो जाय उसे सोख्ते के बीच में रख देना चाहिए जिससे इसका सलोनापन दूर हो जाय। सोख्ता भाप के साथ सलोनेपन को भी सोख लेगा। अन्त में 10 प्रतिशत विनालय एसीटेट का लेप लगा देना चाहिये।

प्राप्त वस्तुओं का प्रदर्शन :—उत्खनन में प्राप्त वस्तुओं का प्रदर्शन बहुत महत्व रखता है। प्राप्त वस्तुओं के प्रदर्शन का स्थान उनके आकार तथा क्षेत्र पर निर्भर करता है। वस्तुओं के प्रदर्शन से उस समय की संस्कृति का ज्ञान व्यक्तियों में होता है। संग्रहालयों में सिक्के तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुयें समय के क्रमानुसार लगायी जाती हैं। अधिकांशत: उत्खनन में प्राप्त वस्तुयें निकट के संग्रहालयों में भेज दिये जाते हैं, यदि उत्खनन क्षेत्र बहुत विस्तृत तथा महत्त्वपूर्ण है तो वहीं पर संग्रहालय बना दिये जाते हैं। संग्रहालयों में प्रत्येक काल की सम्पूर्ण वस्तुयें एक साथ क्रमानुसार लगायी जानी चाहिये जिससे व्यक्ति उनका विकास समझ सके। प्राचीन इतिहास के विकास में उत्खनन तथा संग्रहालयों का वहुत अधिक महत्व है।

स्थान की सुरक्षा—किसी भी ऐतिहासिक स्थान की सुरक्षा करना उत्खाता का प्रथम कर्तव्य है। उत्खनन के पश्चात् उसकी रक्षा करना अनिवार्य होता है। इसलिये उत्खनन क्षेत्र में पानी निकलने के लिए नालियाँ होना चाहिये। उत्खनन के पश्चात् यदि स्थान को वैसे ही छोड़ दिया जायगा तो उसमें वर्षा ऋतु में पानी भर जाने के कारण स्थान नष्ट हो जायगा। सुरक्षा की दृष्टि से उत्खाता को उत्खनन के पश्चात् पुन: गड्ढों को मिट्टी से भरवा देना चाहिये। उत्खनन स्थानों की वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा भी सुरक्षा करना चाहिये। अधिकांशत: प्राचीन अवशेषों में नालियाँ प्राप्त होती हैं, उनका भी उत्खनन के समय उपयोग करना चाहिये। नवीन नालियों का निर्माण करवाते समय ध्यान रखना चाहिये कि प्राचीन नालियों से भिन्न हों, जिससे दर्शक उसको समझ सके। पत्थर की वस्तुओं तथा दीवालों की रक्षा के लिये उनको धुलवाना आवश्यक होता है नहीं तो वे दूषित पदार्थों के कारण गलने लगते हैं। समुद्र के किनारे के अवशेषों तथा मन्दिरों में अवश्य ऐसा करना चाहिये अन्यथा समुद्र के नमकीने पानी से पत्थर गलने लगते हैं। यहाँ पर कोणार्क के सूर्य मन्दिर का उदाहरण महत्वपूर्ण है :—

बरसात के पश्चात मन्दिर की दीवालों की सुरक्षा के लिए उनको धुलवाया जाता है जिससे उनका नमकीनापन समाप्त हो जाय। भविष्य में भी खुदायी करने के लिये स्थानों को सुरक्षित रखना चाहिये जिससे भविष्य में और अधिक अन्वेषण किये जा सकें।

प्राचीन अवशेषों की दीवालों की सुरक्षा के लिये ऊपरी भाग पर लगभग ३" मोटी मिट्टी डाल देना चाहिये जिससे वर्षा ऋतु के पानी दीवाल को हानि न पहुँचा सकें तथा मिट्टी भींग कर दराजों में पहुँच कर स्लेप का कार्य करती है। सूख जाने पर वही मजबूत हो जाती है।

सर्वप्रथम उत्खाता को उत्खनन स्थान के चारों ओर तार या दीवाल से घिरवा देना चाहिये जिससे रात में किसी जीव को नुकसान हो। उत्खनन से प्राप्त मूर्तियों की रक्षा के लिये चौकीदार की नियुक्ति कर देना चाहिये तथा प्राप्त वस्तुओं का विवरण रखने के लिए भी रक्षक नियुक्त किये जाते हैं। उत्खनन के अन्तर्गत सुरक्षा एक महत्वपूर्ण अंग है अत: इस पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

●

अध्याय | 13

प्राचीन स्थानों को ढूँढ़ने के विभिन्न संकेत

प्राचीन स्थानों पर उत्खनन से पूर्व उनकी प्राचीनता का पता लगा लेना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इस कार्य को करने में एक चतुर उत्खाता ही समर्थ हो सकता है। यदि उत्खाता प्राचीन स्थानों का पता लगाये बिना, उत्खनन कार्य शुरू कर देता है तो उसका सम्पूर्ण परिश्रम और धन व्यय व्यर्थ हो जाता है। ऐसे बहुत ही कम उदाहरण मिले हैं जहाँ पर उत्खाता ने बिना प्राचीन स्थानों का पता लगाये उत्खनन कार्य किया हो और वहाँ पर प्राचीन अवशेष मिल गये हों। अतः उत्खाता का सर्वप्रथम कार्य प्राचीन स्थानों का पता लगाना है, तत्पश्चात् वहाँ पर दबे हुए अवशेषों का उत्खनन करके, प्रकाश में लाना है। अब हम प्राचीन स्थान ढूँढ़ने के विभिन्न संकेतों पर प्रकाश डाल रहे हैं।

(1) **ऊँचे टीलों द्वारा**—यह बात सत्य है कि प्राचीन स्थानों का पता ऊँचे टीलों से लगता है पर यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि सभी टीले न तो प्राचीन ही होते हैं और न उनके अन्दर प्राचीन मनुष्य का इतिहास ही छिपा रहता है। अतः प्राचीन टीलों के अन्दर दबी हुई सभ्यता का पता लगाना बहुत ही दुष्कर हो जाता है। इस कार्य को एक चतुर उत्खाता ही कर सकता है जो सर्वज्ञान सम्पन्न हो। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वे स्थान, जो कुछ काल तक निवसित रहते हैं, किसी कारणवश नष्ट होकर उजाड़-खण्ड रूप में पड़े रहते हैं, दूसरी सभ्यता के लोग कुछ समय के अनन्तर वहाँ पर आकर अपना निवास स्थान बना लेते हैं, प्रथम काल की सभ्यता उसी के नीचे दबी पड़ी रहती है, पुनर्निर्माण कार्य प्रायः पूर्व दीवाल के अवशेषों पर ही किया जाता है, इसी प्रकार से यह क्रिया लगातार कई वर्षों तक घटित होने के कारण एक ऊँचे टीले का रूप धारण कर लेती है। वायु द्वारा लाई गई धूल भी इसके निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। ये टीले अपने गर्भ में युगों-युगों के अवशेषों को छिपाये रखते हैं। हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो, तथा अन्य प्राच्य टीले इस तथ्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि छोटे-छोटे टीलों को कृषक लोग समतल करके कृषि योग्य भूमि बना लेते हैं, ऐसी अवस्था में प्राचीन टीलों के संकेतों को ढूँढ़ना बहुत ही कठिन हो जाता है। इनके प्राचीन सांकेतिक चिह्नों का पता लगाने के लिए कुछ अन्य साधनों को उपयोग में लाया जाता है, जो निम्न हैं।

(2) **तलचिह्न संकेत** (Surface Indications)—प्रायः ऐसा देखा गया है कि प्राचीन काल के अधिकांश नगर नदियों के तट पर ही बनाये गये थे। उदाहरणस्वरूप हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो का टीला (सतलज और रावी नदी के तट पर), हस्तिनापुर (गंगा के तट पर), सेण्ट्रल इण्डियन ताम्राश्मीय सभ्यता के अधिकांश नगर (नर्वदा, कावेरी और माहिष्मती के तट पर), उत्तरी और दक्षिणी बलूचिस्तान के नगर (केज नदी के तट पर), और दक्षिणी भारतीय महाश्म सभ्यता के नगर आदि। उत्खनन से अधिकांशतः उपकरण भी इन्हीं नदियों की घाटियों में ही पाये गये हैं। प्राचीन काल के लोग अपनी विभिन्न सुविधाओं के कारण इन्हीं नदियों के तट पर ही अपना निवास स्थान बनाया करते थे

नोट—जहाँ पर कई एक टीले हैं वहाँ पर का सबसे बड़ा टीला ही प्राचीन होगा। इस प्रकार के टीले मेसोपोटामिया में पाये गये हैं।

और ये स्थान बहुधा नदियों में बाढ़ आने के फलस्वरूप ही नष्ट हुआ करते थे। नदियाँ अपने बहाव के साथ विभिन्न युगों से निवसित टीलों के किनारों को काट-काट कर उनके अन्दर दबी हुई सभ्यता को अपने साथ बहा ले जाती थीं। जब नदी का पानी सूख जाता था तब ये उपकरण इधर-उधर बिखरे हुए (पड़े) दिखाई पड़ते थे और कुछ उपकरण तो उन्हीं टीलों के ही इधर-उधर पड़े रहते थे। पुरातत्ववेता इन्हीं तल चिह्न संकेतों के आधार पर उत्खनन करना शुरू कर देता है। इसी प्रकार से वर्षा ऋतु में पानी के अधिक बहाव से टीले कट जाते हैं और वे अपने साथ में अवशेषों को भी बहा लाते हैं। ये उपकरण इन्हीं टीलों के आस-पास में पड़े रहते हैं। उत्खाता इन्हीं संकेतों के आधार पर उत्खनन कार्य करता है। ये उपकपण उत्खाता के लिए उत्खनन का साधन बन जाते हैं।

(3) **प्रतिबिम्ब और कृषिफल संकेत** (Shadow and crop marks)—प्राय: ऐसा देखा जाता है कि कृषि भूमि के अन्दर प्राचीन अवशेष दबे पड़े रहते हैं। इसका मूल कारण यह है कि कृषक लोग भूमि को ज्यों का त्यों पीट पाट कर समतल बना लेते हैं। उत्खाता के लिए यह एक समस्या बन जाती है कि कैसे वह उन दबे हुए पदार्थों का पता लगाये। इसके लिए प्रतिबिम्ब और कृषिफल संकेतों का आश्रय लेना पड़ता है। कृषिफल के संकेत का वहाँ की भूमि का साधारण भूमि से अन्तर, उपज और खड़े पौत्रों के रंग तथा वातावरण से पता लगाया जा सकता है।* जिस भूमि के अन्दर प्राचीन अवशेष छिपे होंगे वहाँ ग्रीष्म में घास नहीं जमेगी या सूख जायेगी साथ ही वहाँ की फसल में हरापन नहीं दिखाई पड़ेगा वह सूखती हुई नजर आयेगी। अन्य फसलों से उसका अन्तर स्पष्टतया दिखाई पड़ेगा और भूमि में तरी न होने के कारण वहाँ पर रात्रि के समय गिरी हुई ओस भी सूख जायेगी। यही इसकी पहिचान के संकेत हैं। उत्खाता को विधिवत इसका परीक्षण करना चाहिए अन्यथा वह अपने कार्य में सफल नहीं हो सकता है। प्रतिबिम्ब संकेत का परीक्षण प्रात: पड़ती हुई सूर्य की किरणों (Sun beams) से किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत दीवार के बुर्ज, खड़िया और मिट्टी की भीति के सब अवशेष रखे जा सकते हैं। ये ऊपर देखने पर तो नहीं दिखाई पड़ते हैं पर प्रातः कालीन सूर्य की किरणों से इनका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। कभी-कभी प्रतिबिम्ब और कृषिफल संकेत एक साथ नहीं मिल जाते हैं। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि प्राचीन स्थानों पर उगे हुए वृक्षों में अधिक घनापन होगा और उसका प्रतिबिम्ब भी साधारण वृक्ष की अपेक्षाकृत अधिक गहरा दिखाई पड़ेगा। यह रूप विशेषकर प्राचीन खाईं पर उगे हुए वृक्षों में ही पाया जाता है। मूल रूप में प्राचीनता का संकेत वृक्ष की दुर्बलता पर ही आँका जाता है। आलोक-चित्रकला भी इस कार्य में सहायक सिद्ध हो सकती है।

(4) **आलोक चित्रकला**—वे प्राचीन स्थान, जिनको कि हम साधारण नेत्रों से नहीं देख सकते हैं, उनको आलोक चित्रकला (Air-Photography) की सहायता से देखा जाता है। आज से लगभग 60 वर्ष पहले से इसका उपयोग प्राचीन स्थान के सांकेतिक चिह्नों को ढूँढ़ने में किया जा रहा है। अन्य देश के लोगों ने भी इस ओर काफी ध्यान दिया और आज यह पुरातत्व के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है। प्राचीन दीवारें, खाइयाँ, गढ़े और अन्य अवशेष, जिनके कि केवल हल्के से प्रतिबिम्ब संकेत ही दिखाई पड़ते थे, उनका आलोक चित्रकला से पूर्ण पता चल गया।

(5) **भूमि परीक्षा द्वारा**—भूमि परीक्षा के निमित्त दो विधियों को उपयोग में लाया जाता है जिसमें प्रथम छड़ प्रवेश (Probing) और द्वितीय शब्द ध्वनि (Bosing) है। प्रथम के अन्तर्गत भूमि के अन्दर एक चार फीट लम्बा और $\frac{1}{2}$ फीट मोटा लोहे का छड़ हाथ के जोर से प्रवेश किया जाता है। पहचान यह है कि यदि छड़ भूमि के अन्दर न प्रवेश करे तो यह जान लेना चाहिए कि इसके अन्दर कोई प्राचीन अवशेष छिपे हैं। जहाँ पर प्राचीन अवशेष होंगे जहाँ की मिट्टी कड़ी और कंकरीली पथरीली होगी। अधिक दिनों तक दबी रहने के कारण मिट्टी में कड़ापन आ जाता है। द्वितीय विधि के अन्तर्गत एक दुरमुट का प्रयोग किया जाता है। इससे भूमि को कूटा या पीटा

*नोट—वुड हिंज (ब्रिटेन) के एक स्थान में कृषि भूमि पर गोल छल्लेदार निशान दिखाई पड़े जो सहस्रों वर्ष पहिले के लकड़ी के खम्भों को संकेत करते थे (दे०, डा० बैजनाथ पुरी, पुरातत्व विज्ञान, पृ० 30)।

जाता है। इसकी पहचान शब्द ध्वनि है। यदि आवाज में गहराई है तो उससे यह अनुमान लगाना चाहिये कि इस भूमि के अन्तर्गत प्राचीन अवशेष छिपे हैं। मिट्टी कड़ी होने के कारण आवाज में अवश्य गम्भीरतापन होगी और यही प्राचीन स्थान का संकेत करेगी। इस विधि का सर्वप्रथम उपयोग पामपेई और हरकुलेनियम में किया गया था।

(6) **दैविक प्राप्ति चिह्न द्वारा**—दैविक कारणों में समुद्रों एवं नदियों का विशेष हाथ रहता है। कभी-कभी ये चट्टानों को काटकर उसके अन्दर दबी हुई सभ्यता को या तो अपने साथ बहा ले जाती हैं या फिर अपने अन्दर ही समा लेती हैं। पुन बाढ़ के प्रचण्ड प्रकोप से उनके ऊपर की जमी हुई मिट्टी (सतहें) कट जाती हैं और छिपे हुये अवशेष किनारे आ जाते हैं। कभी-कभी वे अपनी तीव्र लहरों से चट्टानों को काटकर अवशेषों को बाहर फेंक देती हैं। यही उत्खाता के लिये उत्खनन के साधन बन जाते हैं। ब्रिटेन में नारफक के क्रोमर वेड्स इक्सेस के कलेक्टन वेड्स में इस प्रकार के प्राचीन मानवीय सभ्यता के अवशेष मिले। आस्टेंड के पश्चिम में बेलजियम के किनारे पर 1934 ई० में समुद्र द्वारा ढके हुए स्थान के अवशेष के कुछ अंश 1936 में निकले जब कि भाटे के साथ समुद्र का पानी उतर गया था। बक्सर में गंगा के किनारे पर कगार फटने पर उत्तर कृष्णमार्जित मृत्पात्रादि वहाँ मिले हैं जिनकी तिथि ईसवी की 5-6 शताब्दी तक रखी गयी है। प्रायः खेती के लिये हल जोतते समय प्राचीन सिक्के मिल जाते हैं जिनसे स्थान की प्राचीनता का संकेत होता है। जोगलथम्बी नामक स्थान में नहपान के 14000 सिक्के खेत जोतते समय एक कृषक को मिले। जान गारस्तंग ने जेरिकों के टूम्ब (शव अवशेष) ढूँढ़ने के प्रयास का सुन्दर चित्रण किया है। ऊपर स्तल पर उन्हें कहीं कुछ न दिखाई पड़ा। उन्होंने अपने 100 आदमियों को 3 मील की दूरी तक इधर-उधर गढ़े खोदने का आदेश दिया। इसमें कई रोज नष्ट हुए पर अन्त में एक व्यक्ति कुछ फींकरें लेकर दौड़ आया और वहाँ पहुँचने पर मृतकुण्डिका मिलने लगी और वहीं पर नीचे शव स्थान दिखाई पड़ा। यह अनायास रूप से प्राचीन स्थान मिलने का उदाहरण है। ल्यूनर्डवूली ने भी इसी प्रकार का एक रोचक उदाहरण दिया है। एक स्थान पर सूराख दिखाई पड़ा उसमें पहिले पानी डाला गया, पर वह नीचे कहीं चला गया। फिर गरम मोम डाला गया जो शीघ्र ही कड़ा हो गया और उस स्थान पर नीचे शव अवशेष मिला (उपर्युक्त सभी उदाहरण हमने डा० बैजनाथपुरी की पुस्तक, पुरातत्वविज्ञान के पृष्ठ 33-34 से लिया है) हवा द्वारा भी कभी-कभी प्राचीन सभ्यता के कुछ दृश्य दिखाई पड़ते हैं।

(7) ऐतिहासिक युग के स्थानों का संकेत प्राचीन ग्रन्थ, साहित्य, यात्रियों के वृत्तान्त और स्थानीय किंवदन्तियों से होता है यथा हस्तिनापुर का महाभारत कालीन खंडहर आदि।

(8) **नवीन वैज्ञानिक प्रणालियाँ तथा उनका योगदान**—विज्ञान ने इस दिशा में काफी प्रगति की है। उसने नये-नये यन्त्रों का आविष्कार किया है जिससे प्राचीन स्थान के खोजने में विशेष सहायता मिलती है। संक्षेप में इन वैज्ञानिक आविष्कारों का निम्न ढंग से उल्लेख किया गया है। भूपदार्थ खोज (Geophysical) के अन्तर्गत मेगर-अर्थ-टेस्टर (Megar earth tester), भूमि परीक्षा (Soil analysis), वेथीस्केप्लस (Bathyscaples) (इस यन्त्र के द्वारा पानी के नीचे खोज की जाती है) और प्रोटोन मैग्निटोमीटर (Proton magnetometer) । इस (यन्त्र द्वारा भूमि के नीचे की मिट्टी की परीक्षा की जाती है) आदि। वेथीस्केप्लस का प्रयोग गहराई नापने के लिये भी किया जाता है। विशेषकर समुद्रादि के गर्त में छिपे हुये अवशेषों का पता लगाने के लिये इस प्रणाली को उपयोग में लाया जाता है। इस विधि का प्रयोग भूमध्य सागर में फ्रांस और इटली के तट के निकट किया गया था। प्रोटोन मैग्नीटोमीटर द्वारा भूमि का परीक्षण कर उसके नीचे दबे हुये अवशेषों का पता लगाया जा सकता है। प्रोटीन की मात्रा जिस मिट्टी में तेज होगी, उससे उपर्युक्त परीक्षण द्वारा यही पता चलेगा कि इसके नीचे अवश्य ही कोई अवशेष छिपे हैं। इस विधि का उपयोग हैमटन शायर में डयूरोब्रिवे तथा बेलजियम और हालैण्ड में किया गया।

नोट—भू-पदार्थ के अन्तर्गत मेगर अर्थ टेस्टर की खोज जान बेलसे नामक कैंब्रिज के एक वैज्ञानिक ने सन् 1956 में की थी।

अध्याय | 14

गृहभवन-अवशेष उत्खनन अथवा किसी नगर या ढाँचे का उत्खनन

किसी गृहभवन नगर या निर्माण का उत्खनन (Excavation on Town sites or Structures)—स्तर विन्यास का उत्खनन में विशेष स्थान है। उत्खाता का मुख्य ध्येय स्तर को पहिचानना और उनका एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करना है जिससे उत्खाता स्थान का उत्खनन के आधार पर इतिहास लिख सके। इसके लिए उसे यह चाहिए कि वह विभिन्न स्तरों की परख, मिट्टी का रंग, विभिन्न स्तरों में मिले हुए पदार्थों का विधिवत परीक्षण कर, उनका एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर इतिहास रचाने का प्रयास करे। यदि उत्खाता में विभिन्न स्तरों की परख और उनके उतार-चढ़ाव के समझने की शक्ति नहीं है तो वह अपने उत्खनन कार्य में कभी भी सफल नहीं हो सकता है। गृह भवन के अवशेष पृथ्वी के गर्भ में अधिक दिनों तक पड़े रहने के कारण वे मिट्टी में ऐसा मिल जाते हैं कि उनके स्तरों को पहिचानना बहुत ही दुष्कर हो जाता है। इसके लिए उत्खाता को बड़े धैर्य और बुद्धिमत्ता के साथ स्तरों का परीक्षण करना चाहिए क्योंकि स्तर ही पुरातत्व की मुख्य रीढ़ होती है।

गृहभवन के निर्माण में सबसे पहिले नींव खोदी जाती है। इसके पश्चात् उसी नींव पर एक बृहद् दीवाल खड़ी कर उसी पर कमरे की छत का निर्माण किया जाता है। प्राचीन काल में मकानों के निर्माण में मिट्टी, मिट्टी की कच्ची ईंटें, पक्की ईंटें, लोहे की छड़ें और विशेषकर लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। लकड़ी आदि के अवशेष मिट्टी के अन्दर अधिक दिनों तक दबे रहने के कारण इतना अधिक गल जाते हैं कि उनकी वास्तविक पहिचान करना कठिन हो जाता है। केवल उनके संकेत चिह्नों से ही अनुमान किया जा सकता है कि इस भवन में शायद लकड़ी का प्रयोग किया गया था। उत्खनन करते समय यदि कोई पदार्थ दीवाल के निचले स्तर में मिलता है तो उसका संबंध दीवाल या नींव से स्थापित किया जा सकता है। इसी प्रकार से नींव के नीचे मिले हुए अवशेष का सम्बन्ध भवन निर्माण के पूर्व के काल से, दीवार के साथ में मिले हुए अवशेष का सम्बन्ध दीवार या भवन निर्माण के काल से लगाना चाहिए। कभी-कभी एक ही स्तर में विभिन्न युगों की चीजें मिल जाती हैं। उदाहरणस्वरूप एक स्थल पर हड़प्पा कालीन मोहर, 1910 की इकन्नी और कुषाण कालीन मुद्रा मिली थी। इनको एक ही युग का मान लेना बहुत बड़ी भूल होगी क्योंकि इसमें एक लम्बे काल की कहानी छिपी हुई है। अतः उत्खाता को उत्खनन करते समय भवन गृह के सभी स्तरों का विधिवत परीक्षण करना चाहिए। तत्पश्चात् उनका सम्बन्ध एक दूसरी स्तरों से स्थापित कर इतिहास लिखने का प्रयास करना चाहिए। यदि किसी भवन गृह में उत्खनन करते समय काई के संकेत मिलें तो उससे उत्खाता को यही अनुमान लगाना चाहिए कि इस भवन का पतन शायद किसी बाढ़ के फलस्वरूप ही हुआ होगा। इसी प्रकार से वहाँ पर मिली हुई राख का ढेर उसके आग से जलकर नष्ट होने का तथा अस्थियों के अवशेष और इधर-उधर बिखरे हुए पदार्थ किसी नवागन्तुक के आक्रमण या दैवी प्रकोप (भूकम्प आदि) से नष्ट होने का संकेत करेंगे। भवन गृह के अन्दर मिली हुई, राख, मिट्टी, मृद्भाण्ड के ठीकरे, सिक्के व अन्य पदार्थ आदि से उसके निवसित युग की तिथि निर्धारित की जा सकती है।

अब हम आगे एक ऐसा चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे मकान तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न स्तरों की परख भली भाँति की जा सकती है।

दाहिनी ओर दो स्तर (9 और 10) सबसे पूर्व की संस्कृति का संकेत करते हैं। स्तम्भ गर्त से यह प्रतीत होता है कि भवन निर्माण में लकड़ी का प्रयोग यहाँ पर किया जाता था। साथ ही इससे साधारण निवसित युग का संकेत मिलता है। स्तर 6 से एक दूसरे निवसित युग का संकेत मिलता है। ईंटों, जली हुई लकड़ी तथा मिट्टी की स्तरों से यह प्रतीत होता है कि यह स्थान शायद आग से जलकर नष्ट हो गया था। ये सभी पदार्थ स्तर 5 में मिले हैं। यहाँ पर उत्खनन उपलब्ध हुई पको ईंटों की दीवारों से यह प्रतीत होता है कि संस्कृति पूर्व काल की अपेक्षा ऊँचे स्तर की थी। 4 और 3 स्तर से उपलब्ध हुए अवशेषों से यह विदित होता है कि दीवाल कच्ची मिट्टी की बनायी जाती थी और फर्श भी कच्चा ही होता था। यह संस्कृति के निम्न स्तर की द्योतक है। इस प्रकार से एक ही स्थान पर तीन कालों की संस्कृतियों के अवशेष मिले हैं। उत्खनन क्षेत्र में समकोण (Square) प्रणाली को तथा लेखन कार्य में त्रिकोण माप लेखन विधि को उपयोग में लाना चाहिए। उत्खनन पहले खड़े बल तत्पश्चात् क्षितिजाकार में करना चाहिये। दीवारों की समकालिकता का पता उनमें प्रयुक्त ईंटों से होता है। यदि चारों दीवालें एक ही समय की बनी हुयी हैं तो उनकी ईंटें बाहर की ओर एक दूसरे से फँसी होंगी। इस विधि को बाडिंग कहते हैं।

A. RELATIONSHIP OF STRATIFICATION TO STRUCTURES RETAINED BY CROSS-SECTION

B. THE SAME RELATIONSHIP OBLITERATED BY CONTINUOUS TRENCHING

चित्र 14—Sections illustrating the relationship of strata to a wall, and their removal by summary excavation

कहीं-कहीं पर उत्खनन में कुछ भूत दीवारों (Ghost Walls) के अवशेष भी मिले हैं। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण रोमनो-ब्रिटिश साइट का वेरलेमियम नामक स्थान है। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जहाँ पर प्राचीन दीवाल के अवशेष खड़े होते हैं वहाँ की ईंटें चोर निकाल ले जाते हैं और वहाँ पर केवल मिट्टी की दीवाल ही खड़ी रह जाती है। कुछ समय पश्चात वह मिट्टी गिरकर साधारण मिट्टी में मिल जाती है। ऐसी अवस्था में प्राचीन दीवाल के अवशेष ढूँढ़ना बड़ा मुश्किल हो जाता है। केवल वही उत्खाता इस कार्य को करने में सफल हो सकता है जिसको प्राचीन और आधुनिक मिट्टी की परख का ज्ञान हो।

लकड़ी के अवशेषों का पता मिट्टी की परख पर ही निर्भर करता है। पृथ्वी के गर्भ में अधिक दिनों तक पड़े रहने के कारण वे पूर्णतया राख बन जाते हैं और उनके निशान पृथ्वी पर बहुत ही हल्की मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। ऐसे स्थान पर फावड़े या कुदाल की सहायता से उत्खनन नहीं करना चाहिये। वहाँ पर केवल कन्नी, चाकू या मुलायम ब्रुश की सहायता से धीरे-धीरे मिट्टी को साफ करना चाहिये। यह मिट्टी साधारण मिट्टी में नहीं मिलनी चाहिए और तत्पश्चात् मिट्टी का परीक्षण कर उसकी प्राचीनता निर्धारित करनी चाहिये। उत्खनन से पूर्व उस स्थान का जहाँ पर लकड़ी के संकेत मिलते हैं कैमरा से चित्र ले लेना चाहिये अथवा उसका हाथ से रेखाचित्र खींच लेना चाहिये, जिससे स्थान की मिट्टी की परख सहूलियत से की जा सके। ऐसे स्थानों पर उत्खाता को स्वयं उत्खनन करना चाहिये।

प्राचीन मिट्टी की दीवार की पहचान एक चतुर उत्खाता ही कर सकता है। प्राय: ऐसा देखा गया है कि शीत स्थानों में दीवालें पक्की ईंटों की तथा गर्म स्थानों में कच्ची ईंटों की बनायी जाती थीं। कच्ची ईंटें मिट्टी में भूसा मिला-कर बना ली जाती हैं अथवा मिट्टी में भूसा मिला कर दीवाल खड़ी कर ली जाती है। भूसा मिट्टी की दीवालों को खोखला भी बना देता है। उत्खाता के लिये प्राचीन मिट्टी की दीवाल तथा साधारण मिट्टी में भिन्नता दिखाना कठिन हो जाता है। मिट्टी की पहचान उसके कड़े और ढीलेपन से कर लेनी चाहिये। जितनी ही मिट्टी* अधिक पुरानी होगी उतना ही अधिक उसमें कड़ापन होगा इसके विपरीत साधारण मिट्टी अधिक ढीली या हल्की होगी। आतशी शीशे से भी मिट्टी की परख कर लेनी चाहिये तत्पश्चात् उस स्थान पर उत्खनन करके उपलब्ध हुये प्राच्य अवशेषों के आधार पर वहाँ का इतिहास तैयार करना चाहिये। स्तरों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है और इसी के आधार पर ही किसी स्थान का प्राचीन इतिहास लिखा जा सकता है और ये पुरातत्व विज्ञान के लिये एक वरदान के रूप में सिद्ध हुये हैं। गृहभवन अवशेष उत्खनन पुरातत्वविद् के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इसी के आधार पर स्थान का प्राचीन इतिहास लिखा जा सकता है।

प्राचीन नगरों का उत्खनन

प्राचीन नगरों का उत्खनन उत्खाता इसलिये करता है जिससे उसके अन्दर दबे हुये अवशेषों के आधार पर वहाँ का पूर्ण इतिहास लिख सके। ये नगर प्राचीन संस्कृतियों के बहुत बड़े केन्द्र होते थे। धराशायी हो जाने के कुछ समय पश्चात् ये बृहत् टीले का रूप धारण कर लेते थे। हड़प्पा, मोहें-जो-दड़ो, तक्षशिला, हस्तिनापुर तथा अन्य स्थानों पर उपलब्ध हुए टीले इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। अत्यन्त गहराई में इसके अन्दर दबी हुई सभ्यताओं का पता लगाना उत्खाता के लिये दुष्कर हो जाता है। जब तक इन टीलों का पूर्ण उत्खनन न किया जाय तब तक इनका पूर्ण और सही इतिहास नहीं लिखा जा सकता है। टीले के ऊपरी स्तर में केवल अन्तिम युग की सभ्यता के अवशेष ही मिल सकते हैं। आदि काल के अवशेष तो टीले की निचली सतहों में ही दबे पड़े रहते हैं। अत: टीले का ऊपर से नीचे तक उत्खनन किया जाना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। उदाहरण स्वरूप प्राचीन नगर पुष्कलावती के अवशेष चरसड्डा नामक स्थान में लगभग 80 फीट ऊँचे टीले में छिपे हुये थे। डा० मार्टीमर ह्वीलर ने यहाँ पर उत्खनन के लिये गढ़ के पूर्वी कोने पर समकोण विधि से उत्खनन करने का जिक्र किया है। इसी प्रकार से बल्ख में उन्होंने दक्षिणी गढ़ भित्ति से लेकर अन्दर की ओर एक लम्बी खाई खोदने का आदेश दिया, ताकि प्रत्येक निवसित युग का पूर्ण ज्ञान हो सके।[1]

---

*नोट—हड़प्पा में शव बक्सों का केवल भूरी मिट्टी के रेखा चित्र से ही संकेत मिला था।

(1) डा० ह्वीलर आर्कि० फ्राम दि अर्थ पृ० 108-9

टीलों के उत्खनन में किसी निश्चित सिद्धान्त का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सर्वप्रथम टीलों का विधिवत परीक्षण करना चाहिये क्योंकि वर्षा के दिनों में पानी के तीव्र बहाव के कारण टीले के ऊपरी सतह की मिट्टी कट कर बह जाती है और उसके अन्दर छिपे हुये अवशेष पानी के बहाव के साथ में बहकर टीले के इधर-उधर बिखरे हुये पड़े रहते हैं। जहाँ तक हो सके, उत्खाता को यह चाहिये कि वह समय और धन-व्यय का ध्यान रखते हुये टीले के ढालू सतह से ही उत्खनन कार्य आरम्भ करे। इससे वह थोड़े ही समय में और कम व्यय में उत्खनन कार्य कर सकता है। हड़प्पा के टीले में इसी विधि से उत्खनन कार्य 50 फीट की गहराई तक बड़ी सहूलियत से किया जा सका। केवल टीले के एक भाग पर ही उत्खनन करने से वहाँ का पूर्ण सांस्कृतिक इतिहास नहीं लिखा जा सकता है, इसके लिये नगर के केन्द्र भाग, नगर द्वार, दीवारों के बुर्ज, नगर के चारों ओर बनी हुई रक्षात्मक दीवाल आदि को ढूँढ़ने का प्रयास करना चाहिये। नगर का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है अतः सम्पूर्ण स्थानों पर उत्खनन कार्य नहीं किया जा सकता है। इसके लिये क्षेत्र को छोटे-छोटे भागों में बाँट कर समकोण प्रणाली से उत्खनन करना चाहिये। समानान्तर प्रणाली का प्रयोग गढ़ भीति से मुख्य केन्द्र तक का सांस्कृतिक इतिहास जानने के लिये किया जाना चाहिये। उत्खनन पहले खड़े बल से करके वहाँ के सम्पूर्ण इतिहास का ज्ञान (नगर का जन्म उत्थान और पतन) प्राप्त कर लेना चाहिये तत्पश्चात् क्षितिजाकार में उत्खनन करके वहाँ के सांस्कृतिक इतिहास (धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक) का पता लगाना चाहिये। किसी भी नगर के सम्पूर्ण इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उत्खाता को बड़े धैर्य से काम करना होगा। सर जान मार्शल ने तक्ष-शिला में तथा मार्टीमर व्हीलर ने विभिन्न स्थानों में उपर्युक्त विधियों से उत्खनन करके कई एक नगरों की प्राचीन संस्कृति को प्रकाश में ला दिया है। भारतीय पुरातत्व विज्ञान उनका सदैव के लिये ऋणी रहेगा।

नगर के केन्द्रीय भाग से गढ़ भीति तक समानान्तर विधि से उत्खनन करने से उन दोनों के सम्बन्ध का पता बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है। उत्खनन से पूर्व ट्रायल ट्रेञ्च विधि से उत्खनन करके परीक्षा कर लेना अनिवार्य है जिससे यह पता चल सके कि यहाँ पर प्राचीन नगर के अवशेष छिपे हुए हैं और किस विधि से उत्खनन करें जिसमें पूर्ण सफलता मिले। डा० व्हीलर ने इस पर विशेष जोर दिया है और कहा है कि क्षेत्रीय उत्खनन में समकोण प्रणाली का ही आश्रय लेना चाहिये क्योंकि इस विधि में सुगमता से एक विस्तृत क्षेत्र का उत्खनन किया जा सकता है। कभी-कभी दीवारों में सीधे जोड़ मिलते हैं वहाँ पर क्रास सैक्शन का प्रयोग करना चाहिये जिससे प्राचीन और नवीन दीवाल के अवशेष की परख मिल सके। सीधे जोड़ का सबसे सुन्दर उदाहरण बेबीलोन (6 वीं शती ई० पू०) नेबूचदनेज्जर के ग्रेट इश्तर गेट में (Nebuchadnezar's great Ishtar Gate at Babylon) मिला है। इस विषय में कोल्डेवे (Koldewey) का मन्तव्य महत्वपूर्ण है।

"It is conceivable that those parts of the wall where the foundations are specially

---

नोट—पुष्कलावती में 1902-3 सर जान मार्शल ने 20 फीट की गहराई तक खोदाई करवायी थी पर उसमें केवल सिख और मुसलमान कालीन अवशेष और कुछ प्राचीन ऐतिहासिक युग की चीजें प्राप्त हुईं। प्राचीन नगर का पता नहीं चल सका, यद्यपि चीनी यात्री च्वान-यांग के समय (ई० 7 वीं शताब्दी) में भी यह नगर निवसित था। इसी प्रकार से बल्ख में भी प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् फूशेर (Foucher) को ऊँचे स्थान पर उत्खनन करने पर इसी प्रकार का अनुभव हुआ। वह एक मसजिद के अवशेष पर पहुँचे जो थोड़ा समय पहिले बनी थी। दोनों ही स्थानों में ऊपर से धीरे-धीरे नीचे की ओर उत्खनन कार्य किया गया। अन्त में वे जिस स्थान पर पहुँचे उसका ऐतिहासिक और पुरातात्विक दृष्टिकोण से कोई महत्व नहीं था। इन स्थानों का महत्व इनके प्राचीन इतिहास पर है (दे० डा० बैजनाथ पुरी, पुरातत्व विज्ञान, पृ० 76)।

deep do not sink so much in the course of time as those of shalllower foundations, and settlement is unavoidable even with these, standing as they do upon earth and mud. Thus where the foundations are dissimilar there must be cleavages in the walls which would seriously endanger the stability of the building. The babylonians forsaw this and guarded against it. They devised the expansion joint which we also make use of under similar circumstances.

By this means walls that adjoin each other but which are on foundations of different depths are not built in one piece. A narrow vertical space is left from top to bottom of the wall, leaving the two parts standing independent of each other. In order to prevent any possibility of their leaning either backwards or forwards, in Babylon a vertical fillet was frequently built on to the less deeply rooted wall, which slid in a groove in the main wall. The two blocks run in a guide, as an engineer would call it. (See R. Koldewey, The Excavations at Babylon, trans, by A. S. Johns (London, 1914). p. p. 26-8 and quoted by Wheeler, Arch, from the Earth, P. 99).

नगर का केन्द्रीय भाग ही वहाँ की राजनीति और इतिहास का मुख्य केन्द्र होता है। जहाँ पर की जमीन समतल होती है वहाँ उत्खनन कार्य सरल हो जाता है। उत्खाता वहाँ पर समकोण प्रणाली द्वारा उत्खनन कराता है और उपलब्ध हुए अवशेषों के आधार पर वहाँ का इतिहास रचाता है। पिटरी ने इजिप्ट में उत्खनन करते समय लिखा था—

"In order that our deep digging might be satisfactorily carried out an extensive system of levelling was necessary. The levels of every building and of every wall were therefore taken, especial attention being paid to door-sills and pavements as being for purposes of stratification the most important parts of a building. In addition, both the locus and level of every object found, whether it was regarded at the time as important or not, were noted in order not only to correlate each object with the building in which it was found, but also to facilitate the study of the development of art and technique. As some thousands of objects were unearthed in the sections that we excavated, it may be thought that this procedure was unnecessarily laborious. This, however, was not the case. The levelling instruments were set up early in the morning and remained in position all day; and it was quite a simple matter to take the level of each object directly it appeared." (Quoted by Wheeler, Arch. from the Earth, P. 69).

डा० ह्वीलर का कथन है कि पिट्री द्वारा कथित यह (पूर्वोक्त) विधि सभी विघ्न रूपी घेरों से स्वतन्त्र नहीं है। वह पुन: कहते हैं—

"That there were limitations to the deductions to be drawn from the levels at which objects are found. For instance, if a jar or a seal lies either below or at some distance above a pavement or doorsill, it is difficult to decide to what period it belongs. We, therefore adopted the rule that all objects found in or near the foundations of a building be assigned

to the period of that building rather than to the previous phase, unless they actuelly rested on the remains of a pavement of earlier date; for it is more that probable than they were dropped or left behind when the foundations were being made.''

(Arch. from the Earth, P. 69).

नगर की निर्माण-विधि का पता विशेषकर वहाँ की दीवालों से ही होता है। अफ्रीका और एशिया के सूखे भागों मे दीवालें मुख्यतया कच्ची ईंटों से बनाई जाती थीं। इन कच्ची ईंटो को भूसा मिलाकर बनाया जाता था या मिट्टी में भूसा मिलाकर दीवाल खड़ी कर ली जाती थो। भूसा दीवाल में खोखलापन पैदा कर देते हैं। मिट्टी की प्राचीन और आधुनिक दीवाल की पहिचान करना बहुत ही मुश्किल कार्य होता है।* अतः इनके लिए उत्खाता को यह चाहिये कि वह मिट्टी का सर्वप्रथम परीक्षण करे और तत्पश्चात क्रास-सेक्सन और स्तरों की विधिवत् परख करते हुए उत्खनन कार्य करे। एक पुरातात्विक टेकनीकवेत्ता ने लिखा है—

"The principal difficulty faced by an archaeologist in dealing with mud bricks lies in the fact that material used in their constructions is not unlike that of the earth in which they have been buried for centuries. As a result there have been a number of cases where long narrow rooms turned out to be heavy walls, in other wards, the excavators recognized a slight change in colour or consistency of the ground during the digging but removed the walls and left the rooms unexcavated." (Quoted by Wheeler, Arch. from the Earth, P. 104).

गर्त और स्तम्भ गर्त का उत्खनन—प्रायः ऐसा देखा गया है कि ये गर्त किसी न किसी स्तम्भ निर्माण के ही सूचक होते हैं। पाटलिपुत्र में उत्खनन से उपलब्ध इसी प्रकार के गर्त लकड़ी के स्तम्भों का संकेत करते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ के भवनों की छत लकड़ी के स्तम्भों पर आधारित थी। बड़े-बड़े गर्तों का उत्खनन वृत्तपाद प्रणाली से करना चाहिये। इन गर्तों को चार बराबर भागों में बाँट देना चाहिये और बीच में सेक्सन के लिये मिट्टी की एक मोटी दीवार को छोड़ देना चाहिये जिससे मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में सहूलियत हो जाय। पहले 1 और 3 गर्त में और फिर 2 और 4 गर्त में क्रमशः उत्खनन करना चाहिये। इस विधि से उत्खनन करने में सहूलियत हो जाती है और बाद में दीवार तोड़ कर सम्पूर्ण गर्त का आसानी से उत्खनन किया जा सकता है। लकड़ी के स्तम्भ गर्त की पहिचान वहाँ पर उपलब्ध काली मिट्टी के अवशेष से की जा सकती है। जहाँ पर ये स्तम्भ गाड़े गये होंगे वहाँ पर ऊपर से लेकर नीचे तक की मिट्टी काली होगी।

चित्र 15

उत्खाता को गर्त का उत्खनन बड़ी सावधानी से करना चाहिये क्योंकि कभी-कभी एक ही गर्त में कई युगों के अवशेष दबे पड़े रहते हैं अतः उनका विधिवत् परीक्षण करते हुए उत्खनन कार्य आगे बढ़ाना चाहिये।

***नोट**—पक्की ईंटों के आकार-प्रकार एवं उनके बनावट के ढंग के आधार पर (अन्य प्राचीन ईंटों से उनकी समता कर) उनकी प्राचीनता एवं समकालिकता निर्धारित की जा सकती है।

मेंड़ का उत्खनन—अधिकांशत: कृषक लोग आस-पास की मिट्टी को इकट्ठा करके मेंड़ का रूप दे देते हैं। कुछ स्थानों पर वे किसी अन्य स्थान (जैसे तालाब आदि) से मिट्टी लाकर मेंड़ का निर्माण करते हैं। आवश्यकतानुसार ये मेंड़ अधिक ऊँचे या छोटे बनाये जाते हैं। यहाँ पर उत्खनन के लिये मेंड़ की सीधान से समकोण दिशा तक चौड़ी खाईं खोदनी चाहिये। मेंड़ के उत्खनन से हमारा यहाँ पर अभिप्राय उन प्राचीन मेड़ों से है जिनका निर्माण उसी स्थान की मिट्टी को खोद कर किया जाता है। इस प्रकार नीचे की प्राचीन मिट्टी ऊपर आ जाती है और आधुनिक मिट्टी नीचे चली जाती है अत: उत्खनन करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि मेड़ के ऊपरी सतह की मिट्टी सबसे प्राचीन होगी और उसके निचले सतह की मिट्टी क्रमानुसार आधुनिक। स्तरों का विधिवत परीक्षण ही उत्खाता की सफलता का मूल कारण होगा। उत्खनन की खाईं इतनी चौड़ी होनी चाहिये कि जिससे मेड़ के सेक्शन का चित्र अच्छी तरह से लिया जा सके। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि मेंड़ों के निर्माण में मिट्टी के अतिरिक्त ईंट, पत्थर अथवा लकड़ी का भी प्रयोग किया जाता है, जिससे मेंड़ अपनी सुरक्षित दशा में कायम रह सके। इससे मेड़ की बनावट तथा निर्माण तिथि निर्धारित करने में मदद मिलती है। यदि मेंड़ अधिक ऊँचे हैं तो उत्खनन करते समय सीढ़ियाँ बना लेनी चाहिए जिससे नीचे की मिट्टी ऊपर आसानी से लायी जा सके।

खाईं का उत्खनन—इसका उत्खनन करने के लिए समकोण दिशा में, गहराई के अनुसार एक चौड़ी खाईं खोदनी चाहिए।

उत्खनन में लेख प्रमाणों का महत्व

उत्खनन में लेख प्रमाणों का महत्वपूर्ण स्थान है। लेख प्रमाणों के अभाव में तिथियों का निर्धारण सम्भव नहीं हो सकता है इसलिये उत्खाता उत्खनन के समय प्राप्त वस्तुओं के स्थान और स्तर को नोट कर लेता है। वस्तुओं का स्तर और स्थान जानने के लिये उनमें प्रत्येक स्थिति की नाप, गहराई, चौडाई और लम्बाई की नाप करना चाहिये, इसीलिये वैज्ञानिक ढंग का उत्खनन साधारण ढ़ग से अच्छा होता है। वैज्ञानिक ढंग के अन्तर्गत उत्खाता वस्तु का स्तर, स्थान तथा वस्तु का पूर्ण विवरण रखता है, जिस विवरण के आधार पर वह किसी निकर्ष पर पहुँचता है। मिट्टी और पत्थरों के टुकड़ों के आधार पर ही उस काल की सभ्यता और संस्कृति का पता लगाया जाता है। इसलिये लेख प्रमाणों का बहुत अधिक महत्व है। प्रमाणों के एकत्रित करने में विभिन्न नाप स्थानों पर विभिन्न प्रकार से करना चाहिये। नाप करने के पहले अवशेषों की दिशा, प्राप्त वस्तुओं का स्थान, शवों के ढाँचे का मुँह, गहराई तक वहाँ की मिट्टी का पूर्ण विवरण रखना चाहिये। उत्खनन में विभिन्न प्रकार के लेख प्रमाणों का प्रयोग किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं—

परिसर क्षेत्र और लेख प्रमाण :—उत्खनन करते समय इस प्रकार के क्षेत्रों में चारों कोनों पर खूँटे लगा दिये जाते हैं। उसमें कोई वस्तु मिलने पर उसको फीते से नापा जाता है। उस स्थान की लम्बाई-चौड़ाई और गहरायी भी फीते से ही नापी जाती है। परिसर क्षेत्रों की त्रिकोणात्मक माप (लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई) की जाती है। गहरायी नापने के लिये ५ या १० फुट लम्बे पैमाने का प्रयोग किया जाता है। ज्यादा गहरायी वाले क्षेत्रों में एक सहायक की नितान्त आवश्यकता रहती है। किनारे के खूँटों पर अ-ब-स आदि चिह्न अंकित कर दिये जाते हैं जिससे सांकेतिक चिह्नों द्वारा परिणाम निकाला जा सके। इस प्रकार के क्षेत्रों में त्रिदिशा परिणाम लिया जाता है तथा प्रत्येक प्राप्त वस्तु के स्तर को भी लिखा जाता है।

नोट—समुद्र की सतहों में पड़े हुए अवशेषों की खोज भी बड़ी प्रगति के साथ की जा रही है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने इस विषय में श्लाघनीय कार्य किया है। पुरातत्व विज्ञान भी प्रगति कर रहा है और आशा है कि इसका भविष्य उज्ज्वल होगा।

त्रिकोण नाप और लेखन :—त्रिकोणात्मक क्षेत्र के उत्खनन में सर्वप्रथम डेटम रेखा का निर्माण किया जाता है। डेटम रेखा का निर्माण उत्खनन करने के पहले तीन-तीन फीट की दूरी पर कीले लगा दिये जाते हैं। उन कीलों से सुतली बाँध दी जाती है। प्रत्येक कीले पर १, २, ३, संख्यायें अंकित रहती हैं। इस खुदायी में प्राप्त वस्तु और उसका स्थान जानने के लिये बाईं ओर की सबसे निकट वाले कीले से लम्बाई, चौड़ाई तथा गहरायी नापी जा सकती है। एंगिल मेजर से इसको लम्बाई-चौड़ाई नापी जाती है। एंगिल मेजर की सहायता से धरातल की समानान्तर सतह नापी जाती है। गहरायी नापने के लिये लम्बा फीता, गुनिया या रूल का प्रयोग किया जाता है। त्रिकोणात्मक खुदायो के अन्तर्गत प्राप्त वस्तु की निकटता अपने बाईं ओर के कीले से हो मानो जातो है। इस प्रकार को खुदायो से प्राप्त परिणामों को ५ खानों में लिखा जाना चाहिये। प्रथम में वस्तु का क्रमानुसार नम्बर दिया जाता है। दूसरे खाने में परिणाम का पूरा ब्यौरा रहता है। यह परिणाम बाईं ओर के खूँटे से लिया जाता है। तीसरे खाने में स्तर का नम्बर और सूक्ष्म वृत्तान्त लिखा जाना चाहिये। चौथे खाने में प्राप्त वस्तु का वर्णन रहता है और पाँचवें खाने में उसके आकार का चित्रण किया जाता है।

चिह्न संकेत और मानचित्र :—उत्खनन में मानचित्र का बहुत महत्व होता है। उत्खाता को सर्वप्रथम मानचित्र का निर्माण करना चाहिये। खुदायी करते समय प्राप्त प्रत्येक वस्तु को तथा उसके स्तर को मानचित्र द्वारा प्रदर्शित करना चाहिये। मानचित्र में संकेत चिह्नों द्वारा स्तर विन्यास और प्राप्त वस्तुओं का निरूपण किया जाता है। उत्खनन में प्रत्येक स्तर का रंग या संकेत पुरातत्व विभाग ने निश्चित कर दिया है। विभिन्न रंगों द्वारा भी स्तरों का बँटवारा किया जा सकता है परन्तु उसमें पूर्ण स्पष्ट विवरण प्राप्त होने में कठिनाई का अनुभव होता है। उत्खनन में लेख प्रमाणों के अभाव में कोई भी विवरण स्पष्ट और पूर्ण नहीं प्राप्त होता है। इन प्रमाणों के अभाव में इतिहासकार का यथार्थता पर पहुँचना भी असम्भव है। लेख प्रमाणों के अभाव में उत्खनन कार्य ही पूर्ण नहीं हो सकता है।

अध्याय | 15

प्राचीन शव निखात उत्खनन

प्राचीन शव निखात उत्खनन (Burials)—प्राचीन काल से ही शव संस्कार चार विधियों से मनाया जा रहा है। ये विधियाँ निम्न हैं :

(1) दाह कर्म (Burning the dead body after placing it on a funeral pyre)

(2) अस्थि संचय (Asthi Sanchaya)

(3) शान्ति-कर्म (Shanti karma)

(4) श्मशान चित्य (Shmashan chitya)

साधारणतया प्रचलित प्रथा यही थी कि मृत्यु के उपरान्त शरीर को पृथ्वी के नीचे गर्त खोदकर गाड़ दिया जाता था अथवा उसके शरीर को चिता पर रखकर जला दिया जाता था और जलने के बाद उसकी हड्डियों, को किसी पात्र या गर्त में रखकर ढँक दिया जाता था। वैदिक काल में शव संस्कारों का विशेष महत्व था। आधुनिक उत्खनन से दो प्रकार के शव निखात उपलब्ध हुए हैं : (1) व्यक्तिगत शव निखात (2) सामूहिक शव निखात। बलूचिस्तान में कुछ

जगहों पर उत्खनन से कई एक ऐसी कब्रें मिली हैं जिसमें तीन मृतक शरीर दफनाये गये थे। इसी प्रकार से सौराष्ट्र (लोथल) में कुछ कब्रों में पुरुष और स्त्री दोनों को लाशें दफनाई गई थीं। कुछ विद्वानों ने इसके आधार पर तत्कालीन समाज में प्रचलित सती-प्रथा पर प्रकाश डाला है। प्राचीन काल से ही लोग मृतक शरीर के साथ में उनके स्मरणार्थ, भेंट स्वरूप अथवा आत्मा की शान्ति के लिये कुछ उपयोगी वस्तुओं को रख देते थे। आधुनिक उत्खनन से मृतक अवशेषों के साथ मिट्टी के पात्र या खिलौने, पकायी हुई मिट्टी के पदार्थ, मनके (Beads) मुद्राएं, प्रस्तर, ताम्र, लोहे एवं सुवर्ण उपकरण, मिट्टी की मुहरें और सिक्के उपलब्ध हुये हैं। हड्डी के अवशेषों और साथ में उपलब्ध हुये उपर्युक्त अवशेषों का पुरातात्विक दृष्टिकोण से बहुत बड़ा महत्व है। शव निखात कार्य भी विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूप में किया जाता था। इसका हम निम्न ढंग से उल्लेख कर रहे हैं :—

(1) **गोल निखात कूट और कैर्न** (Round Barrows and cairns)—इस प्रकार के निखात कूट (मिट्टी के गोल निखात कूट और प्रस्तर के कैर्न) ब्रिटेन (प्रस्तर युग की समाप्ति से) तथा संसार के अन्य बहुत से स्थानों में पाये गये हैं। ये 50 फीट से अधिक व्यास के होते थे। कुछ समय पूर्व, गर्मी के दिनों में निखात कूटों का उत्खनन एक मनोरंजन का साधन माना जाता था। डीन मेरीवेथर ने सन् 1849 में अवेबुरी जिले में 26 दिनों में 31 निखात कूटों का उत्खनन किया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन निखात कूटों में उत्खनन करना बहुत आसान था। उत्खनन कार्य निखातकूट या टीले के केन्द्र भाग से शुरू किया जाता था और धीरे-धीरे मध्य भाग का उत्खनन करते हुए नीचे को उतरा जाता था। इसके लिये निखातकूट के मध्यभाग में एक सकरी ट्रेंच खोदी जाती थी और इसी विधि से सम्पूर्ण निखात कूट का उत्खनन किया जाता था। पिट रिवर्स (Pitt-Rivers) ने इस प्रकार के निखात कूटों का उत्खनन करने के लिये कहा है कि—"That the whole barrow shall be removed and, whenever possible, subsequently replaced." लेकिन पिट रिवर्स द्वारा कथित यह उत्खनन पद्धति हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है क्योंकि प्रायः ऐसा देखा गया है कि उत्खनन करते समय टीले की निचली सतहों में या निखात कूटों के अन्दर या आस-पास किसी अन्य ढांचे या निखात कूटों के अवशेष मिल जाते हैं। ऐसी दशा में बिना विधिवत उत्खनन किये हुये निखात कूटों को घुमा देने से अन्य अवशेषों के नष्ट होने की सम्भावना रहती है। अतः निखात कूटों का विधिवत् ऊपर से नीचे तक उत्खनन करना चाहिये। सर साइरिल फाक्स ने फ्लिन्टशायर में और सर मार्टीमर ह्वीलर ने बेडफोर्ड-शायर में, उपर्युक्त प्रकार के निखात कूटों का उत्खनन समानान्तर प्रणाली द्वारा किया था। इसके लिये उन्होंने निखात कूट के दूसरी ओर नम्बर युक्त खूंटों की दो समानान्तर पंक्तियां एक-एक फीट की दूरी पर गाड़ दी थीं। ये खूंटें कार्य क्षेत्र से समकोण में गाड़े थे जिससे माप और लेखन सहूलियत से हो सके। इसके पश्चात् उन्होंने एक-एक फीट आगे तक खोदा और उपलब्ध हुये अवशेषों के स्थान की दूरी को उसी के सन्निकट दाहिनी ओर के खूंटे से नाप लिया। इसी प्रकार से वे निखात कूटों के अन्तिम स्तर तक खुदाई, माप और लेखन करते गये। इस विधि को त्रिकोण माप लेखन

1—"I raise the earth around thee, that I lay this Lump of earth should not do me any harm."

"May the manes hold this pillar for thee and may Yama prepare a seat for thee in the other world."

"So to thy mother, this earth, the widely extending, very gracious Prithvi. That maiden soft as wool to the pious may protect thee from the abode of destruction."

(Rig-Veda)
X-Verse

विधि कहते हैं। इसमें माप कूट की लम्बाई वाले खूँटे, वहाँ से चौड़ाई और फिर स्थल से ऊँचाई करके ली जाती है। इस विधि से माप बड़ी आसानी से हो जाती है।

इसके अतिरिक्त इन निखात कूटों का उत्खनन चतुर्कोण-वृत्तपाद प्रणाली से भी किया जा सकता है। साधारणतया इस विधि का प्रयोग भारतवर्ष के अधिकांश क्षेत्रों में किया गया है। इस उत्खनन प्रणाली के अन्तर्गत टीले को चार बराबर भागों में बाँट दिया जाता है। आवश्यकतानुसार प्रत्येक कोने पर खूँटे गाड़ दिये जाते हैं और ऊपर खूँटी ठोंक दी जाती है। उत्खनन क्षेत्र में उपलब्ध हुये अवशेषों की माप के लिये उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम दिशा के खूँटे में दो डोरियाँ बाँध दी जाती हैं। खूँटे एक-एक फीट की दूरी पर गाड़े जाते हैं। प्रत्येक उत्खनन क्षेत्र के बीच में 1½ या 3 फीट का चौड़ा मार्ग छोड़ दिया जाता है जिससे लेख प्रमाण, माप और मिट्टी ले जाने में आसानी रहे। पहले एक और 3 फिर 2 और चौथे क्षेत्र में उत्खनन करना चाहिये। इससे प्रत्येक उत्खनन क्षेत्र के अंगों के सेक्शनों का चित्रण हो जाता है और लेख प्रमाण लेना सरल हो जाता है। लेख प्रमाण लेने के लिये सर्वोत्तम विधि यही है। प्रत्येक चतुर्कोण वृत्तपाद को कम्पास प्वाइंट (Compass-point) के द्वारा नम्बरों से अंकित कर देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त* निखात कूट का उत्खनन क्षेत्र के चारों ओर गोल खाईं खोदकर भी किया जा सकता है, पर यह विधि अधिक लाभकारी नहीं है।

2—**लम्बे निखात कूट और कैर्न** (Long Barrows and Chairns) प्रस्तर युग के अन्त तथा कांस्य युग के आरम्भिक काल में (2500 और 1500 ई० पू० के बीच में) यूरोप में शव सहित अथवा शव का दाह संस्कार करने के पश्चात् उसकी हड्डियों को निखात करने की प्रथा थी। इन लम्बे निखात कूटों के समूह वहाँ पर एक शव संस्कार का प्रतिनिधित्व करते हुये प्रतीत होते थे। इसका अध्ययन करने के पश्चात् पुरातत्ववेत्ताओं ने यह अनुमान लगाया कि अन्य स्थानों के सदृश्य यहाँ पर भी दो प्रकार के शव निखात करने की प्रथा थी—(1) मृत प्राय शरीर को कुछ सामग्रियों सहित निखात कर देना तथा (2) दाह कर्म करके उनकी अस्थियों को किसी पात्र में रख कर दफना देना। प्रथम को (Inhumation) तथा द्वितीय को (Cremation) कहते हैं। गोल निखात को कूट शदृश इनका आकार-प्रकार तथा ढाँचा भी चौड़ा होता था। ये लम्बे आकार के होते थे, जैसा कि नाम से प्रतिध्वनित होता है। थिकथार्न डाउन, डारसेट में 90 फीट और केवल 110 फीट लम्बा निखात कूट उत्खनन से उपलब्ध हुआ था। इसके अतिरिक्त मेडन केस्टल डारसेट में 60 फोट चौड़ा और लगभग 1,790 फीट लम्बा मान्सट्रस बैंक निखात कूट (Monstrous bank barrow) मिला था। पिट रिवर्स ने सन् 1893 में हैण्डले डाउन डार्सेट के एक प्रसिद्ध (Wor Barrow) में उत्खनन कार्य किया था। इन्होंने उत्खनन के लिये टीले को लम्बाई तक 45 फोट चौड़ी एक खाईं केन्द्र भाग में खोदी थी और त्रिकोण माप विधि के आधार पर लेखन कार्य किया। इस प्रकार के निखात कूटों के उत्खनन की सर्वोत्तम विधि यह है कि सर्वप्रथम टीले को बराबर भागों में बाँट दे तत्पश्चात् उत्खनन कार्य आरम्भ करे। पहले एक भाग में उत्खनन करे। यदि उत्खनन के दौरान उसके नीचे निखात कूट के अवशेष मिलते हैं तो वहाँ पर क्रास-सेक्शन लगाकर

*"...Other methods have been improvised in recent years in emergency work carried out under a time limit on doomed mounds. With skilful handling, some of these improvisations have produced important results but they are not on that account justified save in emergency. In particular, there has been some reversion to the axial trench, subsequently expanded about the centre of the mound...But the two methods (quadrant and parallel) are the beast to date." (Dr. Wheeler; Arch, from the Earth, P. 118).

उसको छोड़ दे और दूसरे भाग में जब उसी स्थान तक उत्खनन कर ले तब क्रास-सेक्सन को मिटा कर पूर्ण क्षेत्र में उत्खनन करे। जैसे ही निखात कूट के अवशेष मिलें उसको तुरन्त ही रिकार्ड कर लें। माप के लिये त्रिकोण माप विधि को उपयोग में लायें। डा० मार्टीमर ह्वीलर ने ब्रह्मगिरि (मैसूर) में मेगाथिलिक निखात कूट, हरप्पा में समतल शव निखात और ब्रिटेन के कुछ स्थानों में इसी प्रकार के निखात कूटों का उत्खनन कार्य किया। भारत की अपेक्षा ब्रिटेन में लम्बे निखात कूटों की बहुतायत है। मिस्टर सी० डब्ल्यू० फिलिप्स ने सन् 1933-38 में स्केण्डलेवी के 'जाइन्ट्स हिल' टीले पर उपर्युक्त प्रकार के एक शव निखात का उत्खनन कार्य किया था। उन्होंने अपनी उत्खनन विधि का उल्लेख किया है जिसको हम संक्षेप में यहाँ पर उद्धृत कर रहे हैं—सर्व प्रथम उन्होंने निखात कूट के चारों ओर 180 फिट लम्बा और 80 फिट चौड़ा चौकोर क्षेत्र खोदा और प्रत्येक कोने पर एक मजबूत खूँटा गाड़ दिया। चौकोर क्षेत्र को दो बराबर भागों में बाँट दिया और उनके बीच में 5 फिट चौड़ा मार्ग छोड़ दिया, तत्पश्चात् पहले एक क्षेत्र का और फिर द्वितीय क्षेत्र का उत्खनन किया। प्राप्त हुए अवशेषों का लेखन कार्य त्रिकोण माप विधि से किया। प्राय: ऐसा देखा गया है कि उत्खाता लम्बे निखात कूटों का उत्खनन इसी विधि से किया करते थे। कहीं-कहीं पर टीले में लम्बी-लम्बी खाइयाँ खोद कर भी उत्खनन कार्य किया गया है।

वृत्तपाद उत्खनन

चित्र 16

(3) साधारण शव निखात कूट (Flat Cemeteries)—साधारण शव स्थानों को ढूँढ़ना बहुत ही कठिन कार्य होता है (विशेषत: अर्न क्षेत्रों में) क्योंकि वहाँ पर शव निखातों के कोई सांकेतिक चिन्ह नहीं मिलते हैं। उत्खाता को बड़े धैर्य से उन स्थानों का परीक्षण करना चाहिए, तत्पश्चात् परिसर उत्खनन (Area Excavation) करना चाहिए। इसमें समकोण उत्खनन विधि से ही कार्य सुगमता से किया जा सकता है। हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो का टीला इसी प्रकार से उजाड़ खण्ड पड़ा था। उत्खाताओं ने उपर्युक्त विधियों से वहाँ पर उत्खनन कार्य किया और शव संस्कार को प्रथा प्रकाश में आई। यहाँ से उपलब्ध हुए निखात कूटों में आर 37 और सीमीट्री एच सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। साधारण शव गर्तों की चौड़ाई $2\frac{1}{2}$ से 12 फीट, लम्बाई 10-15 फीट और गहराई 2 से $3\frac{1}{2}$ फीट तक थी। हर एक कब्रों के साथ में 15 से 25 पात्र और एकाध कब्रों में 40 पात्र तक भी मिले हैं। कब्रों की संख्या अत्यधिक है। इससे एक विशाल शव संस्कार की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। कुछ कब्रों में मृतक शरीर लकड़ी के बक्सों के अन्दर रखकर दफनाये गये थे जिनका संकेत वहाँ पर उपलब्ध चिह्न और भूरी मिट्टी से होता है। उत्खाता को उत्खनन करते समय इन सब बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए और वहाँ की मिट्टी को चाकू, कन्नी या मुलायम ब्रुश से साफ करना चाहिए, तत्पश्चात् मिट्टी और स्थानिक चिह्नों का विधिवत परीक्षण करना चाहिए। हड़प्पा में इसी विधि से उत्खनन कार्य किया गया और रासायनिक प्रयोग के आधार पर यह पता लगाया जा सका कि बक्स देवदार लकड़ी का था।

(4) मध्य तथा दक्षिण भारत के निखात कूट—मैसूर, केरल, मद्रास, आन्ध्र, महाराष्ट्र, ब्रह्मगिरि और मध्यभारत में पत्थरों का उपयोग शव अवशेष की सुरक्षा के लिए किया जाता था। दक्षिण भारत में यह संस्कृति व्यापक थी। इसी आधार पर संस्कृति का नाम प्रस्तर (वृहद्) युग रखा गया। पुरातत्व विभाग की ओर से सन् 1944 ई०

में बी० डी० कृष्ण स्वामी की अध्यक्षता में, एक मण्डल, दक्षिण भारत की मेगालिथिक सभ्यता के सर्वेक्षण (Survey) के लिए भेजा गया था। इसने विभिन्न स्थानों का विधिवत सर्वेक्षण किया और वहाँ के इतिहास पर प्रकाश डाला।

यहाँ पर शव निखात के लिए विभिन्न प्रकार के पत्थरों का प्रयोग किया जाता था यथा—डोलमेन, हूड, मल्टिपल हूड स्टोन, मेनहिस, ग्रेनाइट, लेटराइट आदि-आदि। यहाँ डोलमेन बड़े-बड़े पत्थर के कोष्ठ (Cist) हैं। यह अधिकतर भूमि के नीचे ही पाये गये हैं। ब्रह्मगिरि में एक पत्थर के घेरे में, आठ फीट की गहराई में, तीन सौ मेगालिथिक कोष्ठ डा० ह्वीलर को मिले थे। यह कोष्ठ एक गोलाईदार क्षेत्र में मिलता है और इसके बाहर पत्थर के टुकड़ों का एक घेरा (Circle) बना दिया जाता है। कोष्ठ के ऊपर शव को रख कर गाड़ दिया जाता था और उसको ऊपर से पत्थर से ढक दिया जाता था जिससे शव अवशेष की पूर्णतया रक्षा हो सके। मास्को में ये कोष्ठ बहुत गहराई में पाये गये हैं। शव स्थान के संकेत के लिए एक पत्थर का घेरा चारों तरफ बना दिया जाता था। शव गर्तों की निर्माण विधि निम्न ढंग से की जाती थी। "पहिले एक गढ़ा खोदा जाता था और उसके किनारों पर बड़े पत्थर उल्टे क्रासाकार रूप में खड़े कर दिये जाते थे। प्रत्येक दिशा में पत्थर का कुछ भाग आगे बढ़ा रहता था। पत्थर प्राय: 5-7 फीट लम्बे, 6 फीट ऊँचे और 2 फीट 4 इंच मोटाई के होते थे। ढकने के लिए कोई 15 फीट लम्बा और 1 फीट मोटाई का पत्थर रख दिया जाता था। पूर्वी पत्थर की दीवार में एक गोल $1\frac{1}{2}$–2 फीट व्यास का छेद होता था। इन कोष्ठों के चारों ओर पत्थर डालकर एक परिधि बना दी जाती थी। सम्पूर्ण कोष्ठ का व्यास लगभग 16-21 फिट तक मिला"[1]

मेगालिथिक कोष्ठ का प्रयोग केवल दक्षिणी भारत के शव निखातों में ही किया गया है। मध्य भारत में इसका एक भी उदाहरण नहीं मिला है। हैदराबाद में इस प्रकार के उदाहरण बहुतायत से मिले हैं। विद्वानों ने दक्षिणी भारतीय मेगालिथ्स (महाष्म) के अवसान की तिथि प्रथम शती ई० निर्धारित की है। शैलो गर्त शव निखात (Shallow pit burials) पत्थर के घेरे में लगभग 12 फीट व्यास के मिले हैं। इस प्रकार के शव निखात केरल (दक्षिण-पश्चिमी भारत), पोरकलम (कोचीन), कुन्नत्तूर (चिंगलीपुत जिले में) आदि आदि स्थानों में मिले हैं। शवपात्रों में, मृद्भाण्ड (विशेषकर काले और लाल मृत्पात्रादि), पकायी हुई मिट्टी के खिलौने, लौह कंगन और हड्डियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ग्रेनाइट या लेटराइट पत्थर के स्लेब्ड कोष्ठ या खासी कोष्ठ (Slabbed Cists of granite or laterite or Khasi Cists) भी उत्खनन से उपलब्ध हुए हैं। यह भी पत्थर के घेरे में थे और लगभग 6 फिट लम्बे और ऊँचे थे। प्रवेश के लिए पत्थर का प्रवेश छिद्र भी बना था। इस प्रकार के कोष्ठ ब्रह्मगिरि (उत्तरी मैसूर), सुत्तुकेनी (पांडिचेरी के नजदीक), पुदुक्कोत्ताय (मद्रास के दक्षिण) और हैदराबाद आदि-आदि स्थानों में मिले हैं।

पत्थर के बड़े-बड़े डोलमेन कोष्ठ चिंगलीपुत में मिले। मृद्भाण्ड लौह उपकरण; टेरीकोट्टा लेग्ड सारकोफगी (Terracote legged Sarcophagi) आदि पदार्थ शव निखातों के साथ में मिले हैं। एक ढाई फीट लम्बा सारकोफेगस कुद्दापह जिले के संकर वरम नामक स्थान से मिला है। यह मद्रास संग्रहालय में अभी भी सुरक्षित है। यह देखने में राम (Ram) के सदृश प्रतीत होता है। यह लोहे का भाला और चाकू लिए है और मेगालिथिक प्रकार के विलक्षण मृद्भाण्डों से घिरा हुआ है। इसी प्रकार का एक दूसरा सारकोफेगस चिंगलीपुत जिले के पल्लवरम नामक स्थान से मिला है जो हस्ति समतुल्य प्रतीत होता है। इसी प्रकार के उपकरण केरल, मास्की (रैचूर जिला) और हैदराबाद से भी मिले हैं।

(१) डा० बैजनाथपुरी, पुरातत्व विज्ञान पृ० ८३

गर्त कोष्ठ (Pit Circles)—ये अण्डाकार के होते थे। उत्खनन से अभी तक इनका व्यास 20-35 फिट तक मिला है। ये प्राय: 3-10 फिट तक गहरे बनाये जाते थे। गर्त के फर्श पर, शव पात्र, पत्थर के विभिन्न औजार (जैसे भाले, चाकू, छेनी इत्यादि), हड्डियाँ, सोने के दाने और ताँबे की चूड़ियाँ आदि उत्खनन से उपलब्ध हुए हैं। इनका उत्खनन चतुर्कोण वृत्तपाद प्रणाली से करना चाहिए। इस प्रणाली का उल्लेख हम अन्यत्र कर चुके हैं, वहीं पर द्रष्टव्य है। गर्त और पत्थर के कोष्ठ अधिकांशतः एक ही संस्कृति के प्रतीक होते हैं जिसकी पुष्टि भिन्न-भिन्न स्थानों पर उत्खनन से उपलब्ध हुए प्रमाणों से होती है।*

पक्की मिट्टी की मुहरों की सुरक्षा के लिए पहिले उन्हें धूप में सुखा लेना चाहिए और सूख जाने के बाद उनको किसी धातु के बक्से में बालू या इसी तरह का कोई अन्य पदार्थ बिछाकर रख देना चाहिए। बक्से को खूब ठीक से बन्द कर देना चाहिए ताकि उसमें हवा न प्रवेश कर सके। इसके बाद बक्से को खूब गरम करना चाहिए जैसे-जैसे बक्सा गरम होता जायगा वैसे-वैसे उसके अन्दर रखे हुए पदार्थ भी पक जायेंगे। इस विधि का उपयोग करने से लेख आदि सुरक्षित हो जाते हैं। यही लेख तिथि निर्माण में संजीवनी बूटी का काम करते हैं। इसके पश्चात् बक्से को उतार लेना (जब बक्सा खूब लाल हो जाय तब) चाहिए। ठंढा हो जाने के बाद उसके अन्दर रखे हुए पदार्थों को मुलायम ब्रुश आदि की सहायता से साफ कर लेना चाहिए। इसी प्रकार की विधि का उपयोग मेसोपोटामियों में मिले मिट्टी पर अंकित लेखों को सुरक्षित रखने के लिए किया गया था।

●

*नोट—शव अवशेष की रक्षा हेतु उन पर गरम मोम या गरम डामर लगाकर रसायन शाला में भेज देना चाहिए।

अध्याय | 16

आलोक चित्रकला
(PHOTOGRAPHY)

पृथ्वी के गर्भ में अधिक दिनों तक पड़े रहने के कारण पदार्थों का आकार-प्रकार एवं उनकी अवस्था इतनी अधिक जीर्ण हो जाती है कि उनको उठाने से टूटने का भय बना रहता है। अतः ऐसी अवस्था में पदार्थों का चित्र ले लेना आवश्यक हो जाता है। इस कार्य को करने के लिए उत्खाता में चित्रकला का अवश्य ज्ञान होना चाहिए। कुछ पदार्थों का केवल पृथ्वी पर प्रतिबिम्ब ही दिखाई पड़ता है या पृथ्वी को अत्यन्त गहराई में उपलब्ध हुए अवशेषों का चित्र लेने के लिए आलोक चित्रकला का उपयोग करना चाहिए। इससे लाभ यह होता है कि सभी लोग प्रकाशित चित्रों सहित रिपोर्ट से ही उत्खनन क्षेत्र और उसमें प्राप्त वस्तुओं तथा स्तर-विन्यास की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। साथ ही पदार्थों के टूट जाने पर भी चित्र से उनका विधिवत परीक्षण किया जा सकता है। इससे उत्खनन क्षेत्र का महत्व भी बढ़ जाता है। चित्र लेते समय कैमरा से सम्बन्धित सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिए। किसी क्षेत्र में उत्खनन करते समय एक पुरातात्विक चित्रकला विशेषज्ञ के लिए जिन विभिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है उनका संक्षेप में यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है :—

to the period of that building rather than to the previous phase, unless they actuelly rested on the remains of a pavement of earlier date; for it is more that probable than they were dropped or left behind when the foundations were being made."

(Arch. from the Earth, P. 69).

नगर की निर्माण-विधि का पता विशेषकर वहाँ की दीवालों से ही होता है। अफ्रीका और एशिया के सूखे भागों मे दीवालें मुख्यतया कच्ची ईंटों से बनाई जाती थीं। इन कच्ची ईंटो को भूसा मिलाकर बनाया जाता था या मिट्टी में भूसा मिलाकर दीवाल खड़ी कर ली जाती थी। भूसा दीवाल में खोखलापन पैदा कर देते हैं। मिट्टी की प्राचीन और आधुनिक दीवाल की पहिचान करना बहुत ही मुश्किल कार्य होता है।* अतः इनके लिए उत्खाता को यह चाहिये कि वह मिट्टी का सर्वप्रथम परीक्षण करे और तत्पश्चात क्रास-सेक्सन और स्तरों की विधिवत् परख करते हुए उत्खनन कार्य करे। एक पुरातात्विक टेकनीकवेत्ता ने लिखा है—

"The principal difficulty faced by an archaeologist in dealing with mud bricks lies in the fact that material used in their constructions is not unlike that of the earth in which they have been buried for centuries. As a result there have been a number of cases where long narrow rooms turned out to be heavy walls, in other wards, the excavators recognized a slight change in colour or consistency of the ground during the digging but removed the walls and left the rooms unexcavated." (Quoted by Wheeler, Arch. from the Earth, P. 104).

गर्त और स्तम्भ गर्त का उत्खनन—प्रायः ऐसा देखा गया है कि ये गर्त किसी न किसी स्तम्भ निर्माण के ही सूचक होते हैं। पाटलिपुत्र में उत्खनन से उपलब्ध इसी प्रकार के गर्त लकड़ी के स्तम्भों का संकेत करते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ के भवनों की छत लकड़ी के स्तम्भों पर आधारित थी। बड़े-बड़े गर्तों का उत्खनन वृत्तपाद प्रणाली से करना चाहिये। इन गर्तों को चार बराबर भागों में बाँट देना चाहिये और बीच में सेक्सन के लिये मिट्टी की एक मोटी दीवार को छोड़ देना चाहिये जिससे मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में सहूलियत हो जाय। पहले 1 और 3 गर्त में और फिर 2 और 4 गर्त में क्रमशः उत्खनन करना चाहिये। इस विधि से उत्खनन करने में सहूलियत हो जाती है और बाद में दीवार तोड़ कर सम्पूर्ण गर्त का आसानी से उत्खनन किया जा सकता है। लकड़ी के स्तम्भ गर्त की पहिचान वहाँ पर उपलब्ध काली मिट्टी के अवशेष से की जा सकती है। जहाँ पर ये स्तम्भ गाड़े गये होंगे वहाँ पर ऊपर से लेकर नीचे तक की मिट्टी काली होगी।

चित्र 15

उत्खाता को गर्त का उत्खनन बड़ी सावधानी से करना चाहिये क्योंकि कभी-कभी एक ही गर्त में कई युगों के अवशेष दबे पड़े रहते हैं अतः उनका विधिवत् परीक्षण करते हुए उत्खनन कार्य आगे बढ़ाना चाहिये।

***नोट**—पक्की ईंटों के आकार-प्रकार एवं उनके बनावट के ढंग के आधार पर (अन्य प्राचीन ईंटों से उनकी समता कर) उनकी प्राचीनता एवं समकालिकता निर्धारित की जा सकती है।

मेंड़ का उत्खनन—अधिकांशत: कृषक लोग आस-पास की मिट्टी को इकट्ठा करके मेंड़ का रूप दे देते हैं। कुछ स्थानों पर वे किसी अन्य स्थान (जैसे तालाब आदि) से मिट्टी लाकर मेंड़ का निर्माण करते हैं। आवश्यकतानुसार ये मेंड़ अधिक ऊँचे या छोटे बनाये जाते हैं। यहाँ पर उत्खनन के लिये मेंड़ की सीधान से समकोण दिशा तक चौड़ी खाई खोदनी चाहिये। मेंड़ के उत्खनन से हमारा यहाँ पर अभिप्राय उन प्राचीन मेड़ों से है जिनका निर्माण उसी स्थान की मिट्टी को खोद कर किया जाता है। इस प्रकार नीचे की प्राचीन मिट्टी ऊपर आ जाती है और आधुनिक मिट्टी नीचे चली जाती है अत: उत्खनन करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि मेड़ के ऊपरी सतह की मिट्टी सबसे प्राचीन होगी और उसके निचले सतह की मिट्टी क्रमानुसार आधुनिक। स्तरों का विधिवत परीक्षण ही उत्खाता की सफलता का मूल कारण होगा। उत्खनन की खाई इतनी चौड़ी होनी चाहिये कि जिससे मेड़ के सेक्शन का चित्र अच्छी तरह से लिया जा सके। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि मेंड़ों के निर्माण में मिट्टी के अतिरिक्त ईंट, पत्थर अथवा लकड़ी का भी प्रयोग किया जाता है, जिससे मेंड़ अपनी सुरक्षित दशा में कायम रह सके। इससे मेड़ की बनावट तथा निर्माण तिथि निर्धारित करने में मदद मिलती है। यदि मेंड़ अधिक ऊँचे हैं तो उत्खनन करते समय सीढ़ियाँ बना लेनी चाहिए जिससे नीचे की मिट्टी ऊपर आसानी से लायी जा सके।

खाईं का उत्खनन—इसका उत्खनन करने के लिए समकोण दिशा में, गहराई के अनुसार एक चौड़ी खाईं खोदनी चाहिए।

उत्खनन में लेख प्रमाणों का महत्व

उत्खनन में लेख प्रमाणों का महत्वपूर्ण स्थान है। लेख प्रमाणों के अभाव में तिथियों का निर्धारण सम्भव नहीं हो सकता है इसलिये उत्खाता उत्खनन के समय प्राप्त वस्तुओं के स्थान और स्तर को नोट कर लेता है। वस्तुओं का स्तर और स्थान जानने के लिये उनमें प्रत्येक स्थिति की नाप, गहराई, चौड़ाई और लम्बाई की नाप करना चाहिये, इसीलिये वैज्ञानिक ढंग का उत्खनन साधारण ढ़ंग से अच्छा होता है। वैज्ञानिक ढंग के अन्तर्गत उत्खाता वस्तु का स्तर, स्थान तथा वस्तु का पूर्ण विवरण रखता है, जिस विवरण के आधार पर वह किसी निकर्ष्ष पर पहुँचता है। मिट्टी और पत्थरों के टुकड़ों के आधार पर ही उस काल की सभ्यता और संस्कृति का पता लगाया जाता है। इसलिये लेख प्रमाणों का बहुत अधिक महत्व है। प्रमाणों के एकत्रित करने में विभिन्न नाप स्थानों पर विभिन्न प्रकार से करना चाहिये। नाप करने के पहले अवशेषों की दिशा, प्राप्त वस्तुओं का स्थान, शवों के ढाँचे का मुँह, गहराई तक वहाँ की मिट्टी का पूर्ण विवरण रखना चाहिये। उत्खनन में विभिन्न प्रकार के लेख प्रमाणों का प्रयोग किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं—

परिसर क्षेत्र और लेख प्रमाण :—उत्खनन करते समय इस प्रकार के क्षेत्रों में चारों कोनों पर खूँटे लगा दिये जाते हैं। उसमें कोई वस्तु मिलने पर उसको फीते से नापा जाता है। उस स्थान की लम्बाई-चौड़ाई और गहरायी भी फीते से ही नापी जाती है। परिसर क्षेत्रों की त्रिकोणात्मक माप (लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई) की जाती है। गहरायी नापने के लिये ५ या १० फुट लम्बे पैमाने का प्रयोग किया जाता है। ज्यादा गहरायी वाले क्षेत्रों में एक सहायक की नितान्त आवश्यकता रहती है। किनारे के खूँटों पर अ-ब-स आदि चिह्न अंकित कर दिये जाते है जिससे सांकेतिक चिह्नों द्वारा परिणाम निकाला जा सके। इस प्रकार के क्षेत्रों में त्रिदिशा परिणाम लिया जाता है तथा प्रत्येक प्राप्त वस्तु के स्तर को भी लिखा जाता है।

नोट—समुद्र की सतहों में पड़े हुए अवशेषों की खोज भी बड़ी प्रगति के साथ की जा रही है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने इस विषय में श्लाघनीय कार्य किया है। पुरातत्व विज्ञान भी प्रगति कर रहा है और आशा है कि इसका भविष्य उज्ज्वल होगा।

त्रिकोण नाप और लेखन :—त्रिकोणात्मक क्षेत्र के उत्खनन में सर्वप्रथम डेटम रेखा का निर्माण किया जाता है। डेटम रेखा का निर्माण उत्खनन करने के पहले तीन-तीन फीट की दूरी पर कीले लगा दिये जाते हैं। उन कीलों से सुतली बाँध दी जाती है। प्रत्येक कीले पर १, २, ३, संख्यायें अंकित रहती हैं। इस खुदायी में प्राप्त वस्तु और उसका स्थान जानने के लिये बाईं ओर की सबसे निकट वाले कीले से लम्बाई, चौड़ाई तथा गहरायी नापी जा सकती है। एंगिल मेजर से इसकी लम्बाई-चौड़ाई नापी जाती है। एंगिल मेजर की सहायता से धरातल की समानान्तर सतह नापी जाती है। गहरायी नापने के लिये लम्बा फीता, गुनिया या रूल का प्रयोग किया जाता है। त्रिकोणात्मक खुदायी के अन्तर्गत प्राप्त वस्तु की निकटता अपने बाईं ओर के कीले से ही मानी जाती है। इस प्रकार की खुदायी से प्राप्त परिणामों को ५ खानों में लिखा जाना चाहिये। प्रथम में वस्तु का क्रमानुसार नम्बर दिया जाता है। दूसरे खाने में परिणाम का पूरा ब्यौरा रहता है। यह परिणाम बाईं ओर के खूँटे से लिया जाता है। तीसरे खाने में स्तर का नम्बर और सूक्ष्म वृत्तान्त लिखा जाना चाहिये। चौथे खाने में प्राप्त वस्तु का वर्णन रहता है और पाँचवें खाने में उसके आकार का चित्रण किया जाता है।

चिह्न संकेत और मानचित्र :—उत्खनन में मानचित्र का बहुत महत्व होता है। उत्खाता को सर्वप्रथम मानचित्र का निर्माण करना चाहिये। खुदायी करते समय प्राप्त प्रत्येक वस्तु को तथा उसके स्तर को मानचित्र द्वारा प्रदर्शित करना चाहिये। मानचित्र में संकेत चिह्नों द्वारा स्तर विन्यास और प्राप्त वस्तुओं का निरूपण किया जाता है। उत्खनन में प्रत्येक स्तर का रंग या संकेत पुरातत्व विभाग ने निश्चित कर दिया है। विभिन्न रंगों द्वारा भी स्तरों का बँटवारा किया जा सकता है परन्तु उसमें पूर्ण स्पष्ट विवरण प्राप्त होने में कठिनाई का अनुभव होता है। उत्खनन में लेख प्रमाणों के अभाव में कोई भी विवरण स्पष्ट और पूर्ण नहीं प्राप्त होता है। इन प्रमाणों के अभाव में इतिहासकार का यथार्थता पर पहुँचना भी असम्भव है। लेख प्रमाणों के अभाव में उत्खनन कार्य ही पूर्ण नहीं हो सकता है।

अध्याय | 15

प्राचीन शव निखात उत्खनन

प्राचीन शव निखात उत्खनन (Burials)—प्राचीन काल से ही शव संस्कार चार विधियों से मनाया जा रहा है। ये विधियाँ निम्न हैं :

(1) दाह कर्म (Burning the dead body after placing it on a funeral pyre)

(2) अस्थि संचय (Asthi Sanchaya)

(3) शान्ति-कर्म (Shanti karma)

(4) श्मशान चित्य (Shmashan chitya)

साधारणतया प्रचलित प्रथा यही थी कि मृत्यु के उपरान्त शरीर को पृथ्वी के नीचे गर्त खोदकर गाड़ दिया जाता था अथवा उसके शरीर को चिता पर रखकर जला दिया जाता था और जलने के बाद उसकी हड्डियों, को किसी पात्र या गर्त में रखकर ढँक दिया जाता था। वैदिक काल में शव संस्कारों का विशेष महत्व था। आधुनिक उत्खनन से दो प्रकार के शव निखात उपलब्ध हुए हैं : (1) व्यक्तिगत शव निखात (2) सामूहिक शव निखात। बलूचिस्तान में कुछ

जगहों पर उत्खनन से कई एक ऐसी कब्रें मिली हैं जिसमें तीन मृतक शरीर दफनाये गये थे। इसी प्रकार से सौराष्ट्र (लोथल) में कुछ कब्रों में पुरुष और स्त्री दोनों की लाशें दफनाई गई थीं। कुछ विद्वानों ने इसके आधार पर तत्कालीन समाज में प्रचलित सती-प्रथा पर प्रकाश डाला है। प्राचीन काल से ही लोग मृतक शरीर के साथ में उनके स्मरणार्थ, भेंट स्वरूप अथवा आत्मा की शान्ति के लिये कुछ उपयोगी वस्तुओं को रख देते थे। आधुनिक उत्खनन से मृतक अवशेषों के साथ मिट्टी के पात्र या खिलौने, पकायी हुई मिट्टी के पदार्थ, मनके (Beads) मुद्राएँ, प्रस्तर, ताम्र, लोहे एवं सुवर्ण उपकरण, मिट्टी की मुहरें और सिक्के उपलब्ध हुये हैं। हड्डी के अवशेषों और साथ में उपलब्ध हुये उपर्युक्त अवशेषों का पुरातात्विक दृष्टिकोण से बहुत बड़ा महत्व है। शव निखात कार्य भी विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूप में किया जाता था। इसका हम निम्न ढंग से उल्लेख कर रहे हैं :—

(1) **गोल निखात कूट और कैर्न** (Round Barrows and cairns)—इस प्रकार के निखात कूट (मिट्टी के गोल निखात कूट और प्रस्तर के कैर्न) ब्रिटेन (प्रस्तर युग की समाप्ति से) तथा संसार के अन्य बहुत से स्थानों में पाये गये हैं। ये 50 फीट से अधिक व्यास के होते थे। कुछ समय पूर्व, गर्मी के दिनों में निखात कूटों का उत्खनन एक मनोरंजन का साधन माना जाता था। डीन मेरीवेथर ने सन् 1849 में अवेवुरी जिले में 26 दिनों में 31 निखात कूटों का उत्खनन किया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन निखात कूटों में उत्खनन करना बहुत आसान था। उत्खनन कार्य निखातकूट या टीले के केन्द्र भाग से शुरू किया जाता था और धीरे-धीरे मध्य भाग का उत्खानन करते हुए नीचे को उतरा जाता था। इसके लिये निखातकूट के मध्यभाग में एक सकरी ट्रेंच खोदी जाती थी और इसी विधि से सम्पूर्ण निखात कूट का उत्खनन किया जाता था। पिट रिवर्स (Pitt-Rivers) ने इस प्रकार के निखात कूटों का उत्खनन करने के लिये कहा है कि—"That the whole barrow shall be removed and, whenever possible, subsequently replaced." लेकिन पिट रिवर्स द्वारा कथित यह उत्खनन पद्धति हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है क्योंकि प्रायः ऐसा देखा गया है कि उत्खनन करते समय टीले की निचली सतहों में या निखात कूटों के अन्दर या आस-पास किसी अन्य ढाँचे या निखात कूटों के अवशेष मिल जाते हैं। ऐसी दशा में बिना विधिवत उत्खनन किये हुये निखात कूटों को घुमा देने से अन्य अवशेषों के नष्ट होने की सम्भावना रहती है। अतः निखात कूटों का विधिवत् ऊपर से नीचे तक उत्खनन करना चाहिये। सर साइरिल फाक्स ने फ्लिन्टशायर में और सर मार्टीमर ह्वीलर ने बेडफोर्ड-शायर में, उपर्युक्त प्रकार के निखात कूटों का उत्खनन समानान्तर प्रणाली द्वारा किया था। इसके लिये उन्होंने निखात कूट के दूसरी ओर नम्बर युक्त खूँटों की दो समानान्तर पंक्तियाँ एक-एक फीट की दूरी पर गाड़ दी थीं। ये खूँटें कार्य क्षेत्र से समकोण में गाड़े थे जिससे माप और लेखन सहूलियत से हो सके। इसके पश्चात् उन्होंने एक-एक फीट आगे तक खोदा और उपलब्ध हुये अवशेषों के स्थान की दूरी को उसी के सन्निकट दाहिनी ओर के खूँटे से नाप लिया। इसी प्रकार से वे निखात कूटों के अन्तिम स्तर तक खुदाई, माप और लेखन करते गये। इस विधि को त्रिकोण माप लेखन

1—"I raise the earth around thee, that I lay this Lump of earth should not do me any harm."

"May the manes hold this pillar for thee and may Yama prepare a seat for thee in the other world."

"So to thy mother, this earth, the widely extending, very gracious Prithvi. That maiden soft as wool to the pious may protect thee from the abode of destruction."

(Rig-Veda)
X-Verse

विधि कहते हैं। इसमें माप कूट की लम्बाई वाले खूँटे, वहाँ से चौड़ाई और फिर स्थल से ऊँचाई करके ली जाती है। इस विधि से माप बड़ी आसानी से हो जाती है।

इसके अतिरिक्त इन निखात कूटों का उत्खनन चतुर्कोण-वृत्तपाद प्रणाली से भी किया जा सकता है। साधारणतया इस विधि का प्रयोग भारतवर्ष के अधिकांश क्षेत्रों में किया गया है। इस उत्खनन प्रणाली के अन्तर्गत टीले को चार बराबर भागों में बाँट दिया जाता है। आवश्यकतानुसार प्रत्येक कोने पर खूँटे गाड़ दिये जाते हैं और ऊपर खूँटी ठोंक दी जाती है। उत्खनन क्षेत्र में उपलब्ध हुये अवशेषों की माप के लिये उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम दिशा के खूँटे में दो डोरियाँ बाँध दी जाती हैं। खूँटे एक-एक फीट की दूरी पर गाड़े जाते हैं। प्रत्येक उत्खनन क्षेत्र के बीच में $1\frac{1}{2}$ या 3 फीट का चौड़ा मार्ग छोड़ दिया जाता है जिससे लेख प्रमाण, माप और मिट्टी ले जाने में आसानी रहे। पहले एक और 3 फिर 2 और चौथे क्षेत्र में उत्खनन करना चाहिये। इससे प्रत्येक उत्खनन क्षेत्र के अंगों के सेक्शनों का चित्रण हो जाता है और लेख प्रमाण लेना सरल हो जाता है। लेख प्रमाण लेने के लिये सर्वोत्तम विधि यही है। प्रत्येक चतुर्कोण वृत्तपाद को कम्पास प्वाइंट (Compass-point) के द्वारा नम्बरों से अंकित कर देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त* निखात कूट का उत्खनन क्षेत्र के चारों ओर गोल खाई खोदकर भी किया जा सकता है, पर यह विधि अधिक लाभकारी नहीं है।

2—लम्बे निखात कूट और कैर्न (Long Barrows and Chairns) प्रस्तर युग के अन्त तथा कांस्य युग के आरम्भिक काल में (2500 और 1500 ई॰ पू॰ के बीच में) यूरोप में शव सहित अथवा शव का दाह संस्कार करने के पश्चात् उसकी हड्डियों को निखात करने की प्रथा थी। इन लम्बे निखात कूटों के समूह वहाँ पर एक शव संस्कार का प्रतिनिधित्व करते हुये प्रतीत होते थे। इसका अध्ययन करने के पश्चात् पुरातत्ववेत्ताओं ने यह अनुमान लगाया कि अन्य स्थानों के सदृश्य यहाँ पर भी दो प्रकार के शव निखात करने की प्रथा थी—(1) मृत प्राय शरीर को कुछ सामग्रियों सहित निखात कर देना तथा (2) दाह कर्म करके उनकी अस्थियों को किसी पात्र में रख कर दफना देना। प्रथम को (Inhumation) तथा द्वितीय को (Cremation) कहते हैं। गोल निखात को कूट शहश इनका आकार-प्रकार तथा ढाँचा भी चौड़ा होता था। ये लम्बे आकार के होते थे, जैसा कि नाम से प्रतिध्वनित होता है। थिकथार्न डाउन, डारसेट में 90 फीट और केवल 110 फीट लम्बा निखात कूट उत्खनन से उपलब्ध हुआ था। इसके अतिरिक्त मेडन केस्टल डारसेट में 60 फीट चौड़ा और लगभग 1,790 फीट लम्बा मान्सट्रस बैंक निखात कूट (Monstrous bank barrow) मिला था। पिट रिवर्स ने सन् 1893 में हैण्डले डाउन डार्सेट के एक प्रसिद्ध (Wor Barrow) में उत्खनन कार्य किया था। इन्होंने उत्खनन के लिये टीले की लम्बाई तक 45 फीट चौड़ी एक खाई केन्द्र भाग में खोदी थी और त्रिकोण माप विधि के आधार पर लेखन कार्य किया। इस प्रकार के निखात कूटों के उत्खनन की सर्वोत्तम विधि यह है कि सर्वप्रथम टीले को बराबर भागों में बाँट दे तत्पश्चात् उत्खनन कार्य आरम्भ करे। पहले एक भाग में उत्खनन करे। यदि उत्खनन के दौरान उसके नीचे निखात कूट के अवशेष मिलते हैं तो वहाँ पर क्रास-सेक्शन लगाकर

*"...Other methods have been improvised in recent years in emergency work carried out under a time limit on doomed mounds. With skilful handling, some of these improvisations have produced important results but they are not on that account justified save in emergency. In particular, there has been some reversion to the axial trench, subsequently expanded about the centre of the mound...But the two methods (quadrant and parallel) are the beast to date." (Dr. Wheeler; Arch, from the Earth, P. 118).

उसको छोड़ दे और दूसरे भाग में जब उसी स्थान तक उत्खनन कर ले तब क्रास-सेक्सन को मिटा कर पूर्ण क्षेत्र में उत्खनन करे। जैसे ही निखात कूट के अवशेष मिलें उसको तुरन्त हीं रिकार्ड कर लें। माप के लिये त्रिकोण माप विधि को उपयोग में लायें। डा० मार्टीमर ह्वीलर ने ब्रह्मगिरि (मैसूर) में मेगाथिलिक निखात कूट, हरप्पा में समतल शव निखात और ब्रिटेन के कुछ स्थानों में इसी प्रकार के निखात कूटों का उत्खनन कार्य किया। भारत की अपेक्षा ब्रिटेन में लम्बे निखात कूटों की बहुतायत है। मिस्टर सी० डब्ल्यू० फिलिप्स ने सन् 1933-38 में स्केण्डलेवी के 'जाइन्ट्स हिल' टीले पर उपर्युक्त प्रकार के एक शव निखात का उत्खनन कार्य किया था। उन्होंने अपनी उत्खनन विधि का उल्लेख किया है जिसको हम संक्षेप में यहाँ पर उद्धृत कर रहे हैं—सर्व प्रथम उन्होंने निखात कूट के चारों ओर 180 फिट लम्बा और 80 फिट चौड़ा चौकोर क्षेत्र खोदा और प्रत्येक कोने पर एक मजबूत खूँटा गाड़ दिया। चौकोर क्षेत्र को दो बराबर भागों में बाँट दिया और उनके बीच में 5 फिट चौड़ा मार्ग छोड़ दिया, तत्पश्चात् पहले एक क्षेत्र का और फिर द्वितीय क्षेत्र का उत्खनन किया। प्राप्त हुए अवशेषों का लेखन कार्य त्रिकोण माप विधि से किया। प्राय: ऐसा देखा गया है कि उत्खाता लम्बे निखात कूटों का उत्खनन इसी विधि से किया करते थे। कहीं-कहीं पर टीले में लम्बी-लम्बी खाइयाँ खोद कर भी उत्खनन कार्य किया गया है।

वृतपाद उत्खनन

चित्र 16

(3) **साधारण शव निखात कूट** (Flat Cemeteries)—साधारण शव स्थानों को ढूँढ़ना बहुत ही कठिन कार्य होता है (विशेषत: अर्न क्षेत्रों में) क्योंकि वहाँ पर शव निखातों के कोई सांकेतिक चिन्ह नहीं मिलते हैं। उत्खाता को बड़े धैर्य से उन स्थानों का परीक्षण करना चाहिए, तत्पश्चात् परिसर उत्खनन (Area Excavation) करना चाहिए। इसमें समकोण उत्खनन विधि से ही कार्य सुगमता से किया जा सकता है। हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो का टीला इसी प्रकार से उजाड़ खण्ड पड़ा था। उत्खाताओं ने उपर्युक्त विधियों से वहाँ पर उत्खनन कार्य किया और शव संस्कार को प्रथा प्रकाश में आई। यहाँ से उपलब्ध हुए निखात कूटों में आर 37 और सीमीट्री एच सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। साधारण शव गर्तों की चौड़ाई $2\frac{1}{2}$ से 12 फीट, लम्बाई 10-15 फीट और गहराई 2 से $3\frac{1}{2}$ फीट तक थी। हर एक कब्रों के साथ में 15 से 25 पात्र और एकाध कब्रों में 40 पात्र तक भी मिले हैं। कब्रों की संख्या अत्यधिक है। इससे एक विशाल शव संस्कार की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। कुछ कब्रों में मृतक शरीर लकड़ी के बक्सों के अन्दर रखकर दफनाये गये थे जिनका संकेत वहाँ पर उपलब्ध चिह्न और भूरी मिट्टी से होता है। उत्खाता को उत्खनन करते समय इन सब बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए और वहाँ की मिट्टी को चाकू, कन्नी या मुलायम ब्रुश से साफ करना चाहिए, तत्पश्चात् मिट्टी और स्थानिक चिह्नों का विधिवत परीक्षण करना चाहिए। हड़प्पा में इसी विधि से उत्खनन कार्य किया गया और रासायनिक प्रयोग के आधार पर यह पता लगाया जा सका कि बक्स देवदार लकड़ी का था।

(4) **मध्य तथा दक्षिण भारत के निखात कूट**—मैसूर, केरल, मद्रास, आन्ध्र, महाराष्ट्र, ब्रह्मगिरि और मध्यभारत में पत्थरों का उपयोग शव अवशेष को सुरक्षा के लिए किया जाता था। दक्षिण भारत में यह संस्कृति व्यापक थी। इसी आधार पर संस्कृति का नाम प्रस्तर (वृहत्) युग रखा गया। पुरातत्व विभाग की ओर से सन् 1944 ई०

में बी० डी० कृष्ण स्वामी की अध्यक्षता में, एक मण्डल, दक्षिण भारत की मेगालिथिक सभ्यता के सर्वेक्षण (Survey) के लिए भेजा गया था। इसने विभिन्न स्थानों का विधिवत सर्वेक्षण किया और वहाँ के इतिहास पर प्रकाश डाला।

यहाँ पर शव निखात के लिए विभिन्न प्रकार के पत्थरों का प्रयोग किया जाता था यथा—डोलमेन, हूड, मल्टिपल हूड स्टोन, मेनहिंस, ग्रेनाइट, लेटराइट आदि-आदि। यहाँ डोलमेन बड़े-बड़े पत्थर के कोष्ठ (Cist) हैं। यह अधिकतर भूमि के नीचे ही पाये गये हैं। ब्रह्मगिरि में एक पत्थर के घेरे में, आठ फीट की गहराई में, तीन सौ मेगालिथिक कोष्ठ डा० ह्वीलर को मिले थे। यह कोष्ठ एक गोलाईदार क्षेत्र में मिलता है और इसके बाहर पत्थर के टुकड़ों का एक घेरा (Circle) बना दिया जाता है। कोष्ठ के ऊपर शव को रख कर गाड़ दिया जाता था और उसको ऊपर से पत्थर से ढक दिया जाता था जिससे शव अवशेष की पूर्णतया रक्षा हो सके। मास्को में ये कोष्ठ बहुत गहराई में पाये गये हैं। शव स्थान के संकेत के लिए एक पत्थर का घेरा चारों तरफ बना दिया जाता था। शव गर्तों की निर्माण विधि निम्न ढंग से की जाती थी। "पहिले एक गढ़ा खोदा जाता था और उसके किनारों पर बड़े पत्थर उल्टे क्रासाकार रूप में खड़े कर दिये जाते थे। प्रत्येक दिशा में पत्थर का कुछ भाग आगे बढ़ा रहता था। प्रत्थर प्राय: 5-7 फीट लम्बे, 6 फीट ऊँचे और 2 फीट 4 इंच मोटाई के होते थे। ढकने के लिए कोई 15 फीट लम्बा और 1 फीट मोटाई का पत्थर रख दिया जाता था। पूर्वी पत्थर की दीवार में एक गोल $1\frac{1}{2}$–2 फीट व्यास का छेद होता था। इन कोष्ठों के चारों ओर पत्थर डालकर एक परिधि बना दी जाती थी। सम्पूर्ण कोष्ठ का व्यास लगभग 16-21 फिट तक मिला"[1]

मेगालिथिक कोष्ठ का प्रयोग केवल दक्षिणी भारत के शव निखातों में ही किया गया है। मध्य भारत में इसका एक भी उदाहरण नहीं मिला है। हैदराबाद में इस प्रकार के उदाहरण बहुतायत से मिले हैं। विद्वानों ने दक्षिणी भारतीय मेगालिथ्स (महाश्म) के अवसान की तिथि प्रथम शती ई० निर्धारित की है। शैलो गर्त शव निखात (Shallow pit burials) पत्थर के घेरे में लगभग 12 फीट व्यास के मिले हैं। इस प्रकार के शव निखात केरल (दक्षिण-पश्चिमी भारत), पोरकलम (कोचीन), कुन्नत्तूर (चिंगलीपुत जिले में) आदि आदि स्थानों में मिले हैं। शवपात्रों में, मृद्भाण्ड (विशेषकर काले और लाल मृत्पात्रादि), पकायी हुई मिट्टी के खिलौने, लौह कंगन और हड्डियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ग्रेनाइट या लेटराइट पत्थर के स्लेब्ड कोष्ठ या खासी कोष्ठ (Slabbed Cists of granite or laterite or Khasi Cists) भी उत्खनन से उपलब्ध हुए हैं। यह भी पत्थर के घेरे में थे और लगभग 6 फिट लम्बे और ऊँचे थे। प्रवेश के लिए पत्थर का प्रवेश छिद्र भी बना था। इस प्रकार के कोष्ठ ब्रह्मगिरि (उत्तरी मैसूर), सुत्तुकेनी (पांडिचेरी के नजदीक), पुदुक्कोत्ताय (मद्रास के दक्षिण) और हैदराबाद आदि-आदि स्थानों में मिले हैं।

पत्थर के बड़े-बड़े डोलमेन कोष्ठ चिंगलीपुत में मिले। मृद्भाण्ड लौह उपकरण; टेरीकोट्टा लेग्ड सारकोफगी (Terracote legged Sarcophagi) आदि पदार्थ शव निखातों के साथ में मिले हैं। एक ढाई फीट लम्बा सारकोफेगस कुद्दापह जिले के संकर वरम नामक स्थान से मिला है। यह मद्रास संग्रहालय में अभी भी सुरक्षित है। यह देखने में राम (Ram) के सदृश प्रतीत होता है। यह लोहे का भाला और चाकू लिए है और मेगालिथिक प्रकार के विलक्षण मुद्भाण्डों से घिरा हुआ है। इसी प्रकार का एक दूसरा सारकोफेगस चिंगलीपुत जिले के पल्लवरम नामक स्थान से मिला है जो हस्ति समतुल्य प्रतीत होता है। इसी प्रकार के उपकरण केरल, मास्की (रैचूर जिला) और हैदराबाद से भी मिले हैं।

---

(१) डा० बैजनाथपुरी, पुरातत्व विज्ञान पृ० ८३

गर्त कोष्ठ (Pit Circles)—ये अण्डाकार के होते थे। उत्खनन से अभी तक इनका व्यास 20-35 फिट तक मिला है। ये प्राय: 3-10 फिट तक गहरे बनाये जाते थे। गर्त के फर्श पर, शव पात्र, पत्थर के विभिन्न औजार (जैसे भाले, चाकू, छेनी इत्यादि), हड्डियाँ, सोने के दाने और ताँबे की चूड़ियाँ आदि उत्खनन से उपलब्ध हुए हैं। इनका उत्खनन चतुर्कोण वृत्तपाद प्रणाली से करना चाहिए। इस प्रणाली का उल्लेख हम अन्यत्र कर चुके हैं, वहीं पर द्रष्टव्य है। गर्त और पत्थर के कोष्ठ अधिकांशतः एक ही संस्कृति के प्रतीक होते हैं जिसकी पुष्टि भिन्न-भिन्न स्थानों पर उत्खनन से उपलब्ध हुए प्रमाणों से होती है।*

पक्की मिट्टी की मुहरों की सुरक्षा के लिए पहिले उन्हें धूप में सुखा लेना चाहिए और सूख जाने के बाद उनको किसी धातु के बक्से में बालू या इसी तरह का कोई अन्य पदार्थ बिछाकर रख देना चाहिए। बक्से को खूब ठीक से बन्द कर देना चाहिए ताकि उसमें हवा न प्रवेश कर सके। इसके बाद बक्से को खूब गरम करना चाहिए जैसे-जैसे बक्सा गरम होता जायगा वैसे-वैसे उसके अन्दर रखे हुए पदार्थ भी पक जायेंगे। इस विधि का उपयोग करने से लेख आदि सुरक्षित हो जाते हैं। यही लेख तिथि निर्माण में संजीवनी बूटी का काम करते हैं। इसके पश्चात् बक्से को उतार लेना (जब बक्सा खूब लाल हो जाय तब) चाहिए। ठंढा हो जाने के बाद उसके अन्दर रखे हुए पदार्थों को मुलायम ब्रुश आदि की सहायता से साफ कर लेना चाहिए। इसी प्रकार की विधि का उपयोग मेसोपोटामियों में मिले मिट्टी पर अंकित लेखों को सुरक्षित रखने के लिए किया गया था।

●

*नोट—शव अवशेष की रक्षा हेतु उन पर गरम मोम या गरम डामर लगाकर रसायन शाला में भेज देना चाहिए।

अध्याय | 16

आलोक चित्रकला
(PHOTOGRAPHY)

पृथ्वी के गर्भ में अधिक दिनों तक पड़े रहने के कारण पदार्थों का आकार-प्रकार एवं उनकी अवस्था इतनी अधिक जीर्ण हो जाती है कि उनको उठाने से टूटने का भय बना रहता है। अतः ऐसी अवस्था में पदार्थों का चित्र ले लेना आवश्यक हो जाता है। इस कार्य को करने के लिए उत्खाता में चित्रकला का अवश्य ज्ञान होना चाहिए। कुछ पदार्थों का केवल पृथ्वी पर प्रतिबिम्ब ही दिखाई पड़ता है या पृथ्वी को अत्यन्त गहराई में उपलब्ब हुए अवशेषों का चित्र लेने के लिए आलोक चित्रकला का उपयोग करना चाहिए। इससे लाभ यह होता है कि सभी लोग प्रकाशित चित्रों सहित रिपोर्ट से ही उत्खनन क्षेत्र और उसमें प्राप्त वस्तुओं तथा स्तर-विन्यास की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। साथ ही पदार्थों के टूट जाने पर भी चित्र से उनका विधिवत परीक्षण किया जा सकता है। इससे उत्खनन क्षेत्र का महत्व भी बढ़ जाता है। चित्र लेते समय कैमरा से सम्बन्धित सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिए। किसी क्षेत्र में उत्खनन करते समय एक पुरातात्विक चित्रकला विशेषज्ञ के लिए जिन विभिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है उनका संक्षेप में यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है :—

1—उत्खनन क्षेत्र में उपलब्ध अवशेषों का चित्र लेने के लिए तीन पायों पर स्थित, मजबूत, पूर्ण प्लेट आकार ($6\frac{1}{2} \times 8\frac{1}{2}$ इंचों का) का एक कैमरा होना चाहिए। यह कैमरा शीशा, फिल्टर्स (प्रकाश छानने के उपाय) तथा अनुमान (Scale) से युक्त होना चाहिए। कम से कम 6 गहरी स्लाइडों को (फिल्म्स या प्लेटों को पकड़ने के लिए) उपयोग में लाना चाहिए। फोटो का केन्द्र (focus) केवल 6 इंच का होना चाहिए। सुन्दर चित्रों के लिए तेज लेंस वाला कैमरा उपयोग में लाना चाहिए।

2—कम से कम तीन प्रकार के शीशों का प्रयोग करना चाहिए जैसे—एक लम्बे केन्द्र वाला शीशा, एक मध्यम केन्द्र वाला शीशा तथा एक छोटे केन्द्र वाला या चौड़े कोणवाला शीला। टेलीफोटो शीशे का सामयिक प्रयोग भी किया जा सकता है।

3—शीशों को केन्द्रित रखने के लिए लाल, हरे और पीले रंग के फिल्टरों का प्रयोग करना चाहिये।

4—एक भारी तिपाई होनी चाहिये जो कैमरा को आवश्यकतानुसार 6 फिट की ऊँचाई तक उठा सके। तिपाई का शीर्ष भाग घुमावदार होना चाहिये। उसमें एक ऐसा स्क्रू फिट होना चाहिये जिसे आवश्यकतानुसार उसे घुमा कर कस दिया जाय। इस विधि से खड़े बल से चित्रों को बड़ी आसानी से लिया जा सकता है। कैमरे पर 6 इञ्च बबुल लेवेल (Bubble level) फिट कर देना चाहिये जो कैमरे को सोधान में रखने में सहायता पहुँचा सके। एक लम्बा फोकसिंग कपड़ा प्रयोग करना चाहिये।

5—रंगाई के लिए एक रोलीकार्ड प्रकार (Rollicard type) क्षुद्र हस्त कैमरा उपयोग में लाना चाहिये।

6—क्षेत्र में एक ऐसा बक्सा होना चाहिये जिसमें आलोक चित्रकला से सम्बन्धित समस्त उपकरण (जैसे ब्रुश, छोटी-छोटी पटरियाँ, पिन आदि) सुरक्षित रखे जा सकें।

7—उत्खनन क्षेत्र में कुछ ऐसे छिछले पात्र होने चाहिये जिससे चित्रों को विधिवत साफ किया जा सके। समय की बचत के लिये हाइपो पाउडर (Hypo Powder) और पैक्ड डिवलपर (packed developer) को उपयोग में लाना चाहिये। इसका उपयोग निम्न विधि से किया जाता है। किसी टिन के डिब्बे में पाउडर डाल दिया जाता है। जब वह घुल जाता है तब उसी में चित्रों को डालकर ब्रुश की सहायता से साफ कर लिया जाता है।

8—आवश्यकतानुसार तीन प्रकार के ब्रोमाइड पेपरों से (जैसे कोमल, साधारण और कठोर) प्रिंटिंग करनी चाहिये। प्रिंटिंग फ्रेम का उपयोग भी इस कार्य के लिए आवश्यक है।

9—यह भी आवश्यक है कि उत्खाता अपने पास चित्रों के मूल (Negatives) रख ले क्योंकि चित्र के गायब हो जाने पर इन्हीं मूलों की सहायता से दूसरा चित्र बनाया जा सकता है।

10—मूलों की वृद्धि तथा प्रिंटिंग करते समय वहाँ पर एक छोटी घड़ी तथा थर्मामीटर रख लेना चाहिये जिससे समय और अनुकूल वातावरण या तापमान का पता चल सके अन्यथा चित्रों के विकृत हो जाने की सम्भावना रहती है। ब्रिटेन में गर्मी के दिनों में 650 फा० तथा पूर्वी देशों में 754 फा० (बर्फ के प्रयोग के साथ) के तापमान में मूलों में परिवर्द्धन और प्रिंटिंग की जाती है।

अब हम यहाँ पर आलोक चित्रकला सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार कर रहे हैं :—

कैमरा—आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार ने विभिन्न प्रकार के कैमरे प्रचलित कर दिये हैं, जैसे—सूची छिद्र कैमरा, पिन होल कैमरा, स्टैन्ड कैमरा, मुड़ा हुआ कैमरा, मिनिएचर कैमरा, प्रतिबिम्बित कैमरा, तिपाई युक्त कैमरा और मूविंग कैमरा आदि। कैमरे में अवकाश को आवश्यकता के अनुसार ही निश्चित करना चाहिये। चित्र सदैव हल्के प्रकाश में लेना चाहिये अन्यथा चित्र के काले हो जाने की सम्भावना रहती है। छोटे-छोटे पदार्थों का चित्र छोटे कैमरे से भी लिया जा,

सकता है पर बड़े पदार्थों का चित्र लेने के लिए सदैव तीन पायों पर स्थित वाला कैमरा का प्रयोग करना चाहिये । चित्र लेते समय कैमरा के ऊपरी शीशे पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ना चाहिये अन्यथा चित्र धूमिल और काला हो जायगा ।

नाप (Scale)—चित्र लेते समय उसका अनुमान समझने के लिये स्केल का प्रयोग करना चाहिये । इसको रखते समय बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये । इसको प्लेट के समानान्तर में रखना चाहिये । जहाँ तक हो सके कैमरा के नजदीक ही फिट करना चाहिये । किसी क्षेत्र का चित्र लेते समय बड़े 6 फुटे पोल को उपयोग में लाना चाहिये । पदार्थ के अनुसार परिमाण स्केल भी सीधा या आड़ा रखना चाहिये ।

छन्ने (filters)—छन्ने पीले, हरे और लाल रंग के होते हैं । इनका प्रयोग किसी पदार्थ को अधिक देर तक कैमरा के सामने प्रदर्शन (exposure) के लिये किया जाता है । लाल चमकदार प्लेटों के लिए हरे लाल और पीले रंग के छन्नों का प्रयोग किया जाता है । यदि पदार्थ को साधारण समय से 6 गुने अधिक काल तक कैमरा के सामने प्रदर्शित करना है, तो वहाँ पर हरे रंग के छन्ने का प्रयोग करना चाहिये । इसी प्रकार से पीले का दुगने और लाल का चौगुने समय के लिये प्रयोग करना चाहिये । आर्थोक्रोमेटिक या पीले चमकदार प्लेटों के लिये केवल हरे और पीले रंग के छन्नों का प्रयोग करना चाहिये ।

शीशा—चित्र लेते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शीशे पर सूर्य का प्रकाश न पडे । शीशों के फोकल (focal) की लम्बाई थोड़ी और चौड़े कोण वाला होना चाहिए । मिस अलिसन फ्रन्ज ने लिखा है—

"Lenses are described and identified by their focal lengths. The focal length, whihc is fixed for each lens, is approximately the distance between the lens and the image on the film when the lens is focused on a distant point. Lenses of different focal lengths may be used, within reason, on cameras of different sizes. For general use, however, a lens of focal length equal to or slightly greater than the diagonal of the picture area is customary. Therefore the large the camera the greater the focal length of its normal lens. The images projected on the film by lenses of the same focal length at a given distance from the object are of the same size regardless of the size of the camera, and the image-size increases with focal length. Therefore a large camera will take in a greater field than a smaller camera equipped with the same lens." (Archaeology—Arch. Instt. of America—, Dec. 1950, p. 205).

उत्खनन करते समय कुछ पदार्थ इतनी अधिक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मिलते हैं कि उनका साफ और सही ढङ्ग से चित्र नहीं लिया जा सकता है । ऐसी अवस्था में पहले उन्हें साफ करके सजा लेना चाहिए । उदाहरणार्थ काले बर्तनों का चित्रण करते समय उनके नीचे सफेद चाक रख दी जाय जिससे उनका चित्र साफ आ जाय । इसी प्रकार से यदि किसी उपकरण पर उत्कीर्ण लेख मिट गए हैं तो उन्हें आवश्यकतानुसार खड़िया या कोयले से चटक कर देना चाहिए । जिन उपकरणों पर खुरदरापन या गढ़े हैं, उनमें कोई लेप लगा देना चाहिए, जिन बर्तनों पर धब्बापन आ गया हो उन पर चाक का लेप लगाकर चित्र लेना चाहिये अन्यथा वास्तविकता का आभास नहीं रह पाता है । चित्र लेते समय पदार्थ के पीछे अवश्य ही कोई वस्तु रख देनी चाहिए जिससे उसका प्रकाश न तो उस वस्तु के आकार को ही ढक सके और न उसकी चमक कैमरा तक पहुँच सके । कैमरा के सामने कोई चमकीली वस्तु नहीं होनी चाहिए । काले पदार्थों का चित्र सदैव साधारण स्थान में ही लेना चाहिए ।

चित्र लेने के पश्चात उसे अच्छी तरह से पानी से धो देना चाहिए, अन्यथा चित्र के खराब हो जाने का डर रहता है । चित्रों पर चमक लाने के लिए पहले उन्हें 20 प्रतिशत फिटकरी के पानी से धोना चाहिए, तत्पश्चात्

साधारण स्वच्छ पानी से धोकर सुखा लेना चाहिये। किसी अन्धेरे स्थान पर ही इन चित्रों की धुलाई करनी चाहिए। चित्रों को छापने के लिए विभिन्न प्रकार के कागजों का भी प्रयोग किया जाता है।

उत्खाता के पास चित्र का मूल अवश्य होना चाहिए और उसे समय, प्राप्ति-स्थान, दशा, प्रदर्शन, और छन्ने कितने प्रयोग किये गये हैं, उन सबका एक विस्तृत विवरण अपनी नोटबुक में लिख लेना चाहिए : उत्खनन क्षेत्र—जैसे हड़प्पा, साइट इ, सेक्शन 10, साउथ फेस, 11·45 घंटा, प्रखर सूर्य की रोशनी में, 12 इंच का शीशा, लाल छन्ने, फ० 22·3 सेक्स आदि। डा० मार्टीमर ह्वीलर ने हड़प्पा में चित्र लेने के पश्चात इसी प्रकार का विवरण अपनी नोट बुक में लिखा था।

इसके अतिरिक्त वायुयान से भी चित्र लिया जा सकता है (Aerial Photography)। इंग्लैंड और सीरिया में इसी विधि से चित्र लिए गये। जिन स्थानों पर प्राचीन अवशेष स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई पड़ते हैं, केवल उनका प्रतिबिम्ब ही प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के पड़ने पर दिखाई देता है, वहाँ पर इसी विधि से चित्र लिया जा सकता है और इनका उपयोग भी विशेषकर उन्हीं स्थानों में चित्र लेने के लिए ही किया जाता है।

चित्रों की स्लाइड बना लेना भी आवश्यक है। यह स्लाइड शीशे पर बनायी जाती है। चित्र के अनुसार इसे रंग दिया जाता है। इससे चित्र कई गुना बड़ा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसका उपयोग भाषणादि के दौरान सम्पूर्ण विवरण समझने के लिए किया जाता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उत्खनन क्षेत्र के दौरान जितना अधिक महत्व स्तरों की परख का है उतना ही महत्व आलोक चित्र-कला का भी। इस कार्य को एक चतुर एवं आलोक चित्र-कला विशेषज्ञ उत्खाता ही कर सकता है।

चित्र 17—Tower for high-angle photography

अध्याय | 17

उत्खनन की विभिन्न प्रणालियाँ

प्रारम्भिक अध्ययन :—

धैर्य रखना ही उत्खनन की कुंजी है। एक धैर्यवान एवं चतुर उत्खाता ही उत्खनन कार्य को करने में पूर्णतया सफल हो सकता है, साथ ही उसमें आनुभविक शक्ति, परिश्रमी, मानसिक और हार्दिक गुण, इतिहासज्ञ, निरीक्षण नाप (Survey), रसायनशास्त्रज्ञ, आलोक चित्रकला विशेषज्ञ, लेख पटु और मधु भाषी आदि-आदि गुणों का होना भी अति आवश्यक है। उत्खाता और श्रमिकों के बीच में एक अटूट सम्बन्ध होना चाहिए क्योंकि उत्खनन कार्य दोनों के प्रयासों पर ही निर्भर करता है। उत्खनन ही पुरातत्व की मुख्य रीढ़ है। उत्खाता उत्खनन करके वहाँ से उपलब्ध हुई सामग्रियों के आधार पर ही उस स्थान का इतिहास रचाता है। अतः सर्वप्रथम उत्खाता को यह चाहिए कि प्राचीन सांकेतिक चिह्नों को ढूँढ़ने के पश्चात् उस स्थान विशेष का विधिवत परीक्षण करे। तत्पश्चात् आवश्यकता, समय, धन और स्थान आदि का ध्यान रखते हुए यथा योग्य उत्खनन प्रणालियों का उपयोग करे। फ्रांसीसी विद्वानों की कृति (उत्खनन प्रणालियाँ) इस विषय में सराहनीय हैं। उत्खनन करने से पूर्व क्षेत्र विभाजन तथा क्रम पर विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा वह अपने प्रयास में असफल हो सकता है और अपार धन की क्षति भी हो सकती है।

पहिले पहल उत्खाता एक या एक से अधिक स्थान पर परीक्षक गढ़े अथवा लम्बी खाईं खोद कर उत्खनन कार्य कर लेता था, साथ ही वह आवश्यकतानुसार उस स्थान का सम्पूर्ण इतिहास ज्ञात करने के लिए उन गढ़ों को परस्पर मिला भी देता था। पर अब आधुनिक युग में उत्खनन कार्य वैज्ञानिक विधियों का आश्रय लेते हुए, बिल्कुल उसके विपरीत ढंग से किया जाता है। यह प्रणाली किसी भी स्थान के सम्पूर्ण इतिहास के रचाने में बहुत ही सहायक सिद्ध हुई है। फ्रांसीसी विद्वान भी किसी भी स्थान के इतिहास का पता लगाने के लिये बराबर दूरी पर गढ़े खोदते थे और अवशेष दिखाई पड़ने पर उनको परस्पर मिला देते थे। सम्भवतः इन्हीं फ्रांसीसियों की उत्खनन विधि का अनुकरण कर हमारे यहाँ के प्राचीन उत्खाता उत्खनन कार्य करते थे। बौद्धिक और वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ उत्खनन प्रणालियों का भी विकास हो रहा है।

उत्खनन करने से पूर्व यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि उत्खनन क्षेत्र किससे सम्बन्धित है। यदि वह कृषक या अन्य लोगों से (जो सरकारी नहीं हैं) संबंधित है तो उसका मूल्य उसे चुकाने के बाद ही उत्खनन कार्य किया जा सकता है। विदेशियों को भी भूमि का मूल्य चुकाने के साथ-साथ उत्खनन से उपलब्ध हुई सामग्रियों में बँटवारा करके राज्य सरकार को देना पड़ता है साथ ही उसे उत्खनन से पूर्व राज्य सरकार से अनुमति भी लेनी पड़ती है। उत्खनन किए हुए स्थानों को किन्हीं विशेष सांकेतिक चिह्नों से संकेतित कर देना चाहिए जिससे पुनः उत्खनन करने पर यह ज्ञात हो सके कि इस स्थान पर पूर्व उत्खनन हो चुका है। स्थान विशेष की प्राचीनता और उपलब्ध वस्तुओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है।

उत्खनन के दौरान स्तर विन्यास का विधिवत परीक्षण और उपलब्ध सामग्रियों का लेखन कार्य अवश्यमेव कर लेना चाहिए जिससे स्तर क्रमानुसार उस युग का इतिहास निर्माण करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो सके। इसके

लिये उत्खाता में बौद्धिक ज्ञान के साथ-साथ लौकिक एवं ऐतिहासिक बातों का भी ज्ञान होना चाहिए अन्यथा वह किसी भी स्थान का सही एवं सम्पूर्ण इतिहास रचाने में समर्थ नहीं हो सकता है। स्थान की गहराई नापने के लिये विभिन्न प्रकार के मापदण्डों को उपयोग में लाया जाता है।

अब हम संक्षेप में उस अधिकारी एवं सहायक वर्गों का उल्लेख कर रहे हैं जिनके निर्देशन एवं सहायता से उत्खनन कार्य किया जाता है। ये वर्ग निम्न हैं : निदेशक, सहायक या उप-निदेशक, सुपरवाइजर (उत्खनन के प्रत्येक क्षेत्र में), फोरमैन, छोटे-छोटे पदार्थों को लिखने वाला व्यक्ति, एक कुम्भकला सहायक, एक चित्रकला विशेषज्ञ, एक निरीक्षण मापक, एक रसायन शास्त्री, एक मानचित्र निर्माता, आवश्यकतानुसार एक अभिलेख लिपि विशेषज्ञ या मुद्रा शास्त्रज्ञ और बहुत से श्रमिकों की आवश्यकता होती है। उत्खाता का अपना अलग अस्तित्व है। वह अपनी इच्छानुसार उत्खनन कार्य कराता है। बिना उसके उत्खनन कार्य सम्भव नहीं है।

उत्खनन सामग्री का उल्लेख निम्न ढंग से किया गया है :

1—**निदेशक वर्गों के लिए आवश्यक औजार**—थियोदोलाइट (Theodolite), प्लान टेबल, नोट बुक, तीन इंच और 6 इञ्च की खूँटी, चित्रकला के लिये विभिन्न प्रकार की पटरियाँ, रेखाचित्र खींचने के लिये अच्छी पिनें, भारतीय स्याही, कलम और पेण्ट-ब्रुश, चाकू, कम्पास तथा ड्राइङ्ग का सामान, 100 फीट वाला लम्बा फीता, नापजोख के लिए 2 फीट, 4, 6 तथा 8 फीट के पोल (इनमें प्रत्येक फीट के बाद निशान लगा रहता है), झाड़, गुनिया, त्रिकोण मापदण्ड, अच्छी पेंसिल तथा मुलायम इरेसर (eraser), अच्छी स्ट्रिंग, 2 और 5 फीट के फोल्डिंग रूल्स, ड्राइङ्ग बोर्ड, प्लम्ब बाब और दीवारों में स्तर संकेत करने के लिये मोटे कागज के टुकड़े आदि।

2—**श्रमिकों के औजार**—कुदाल, फावड़ा, टोकरी (बड़ी तथा छोटी), चाकू, खुरचनी, क्रो-बार (Crow-bar), हथौड़ा, पाटा, बड़े और छोटे आकार का खुरपा, मिट्टी चढ़ाने के लिये लोहे का कोई अन्य छोटा यंत्र और स्कूप (Scoops) आदि-आदि है।

उत्खनन की विभिन्न प्रणालियाँ (1) **परीक्षक खाइयाँ या गढ़े** (Trial Trenching or Sondages)—उत्खनन से पूर्व स्थान के परीक्षण के लिये इस प्रणाली को उपयोग में लाया जाता है। इसके उपयोग से यह विदित हो जाता है कि यहाँ पर कोई अवशेष है या नहीं। इस विधि से उत्खनन करने से सभ्यता के नष्ट होने का भय बना रहता है। अधिक गहराई में उत्खनन कार्य दुर्लभ हो जाता है। इससे केवल सीमित क्षेत्र तथा बहुत कम गहराई तक की ही सभ्यता का पता लगाया जा सकता है। उपलब्ध अवशेषों के उल्लेख करने में भी कठिनाई होती है। सर्वप्रथम इस विधि का उपयोग मैंडन कैसिल (Maiden Castle—in Dorset—dug by Wheeler in 1935) में ह्वीलर ने लिखा है—

"If a line of ancient entrenchments, for example, is thought to have passed somewhere through a certain field, a trial trench across the field is the obvious method of proving or disproving the theory, and it would be pedantry to protest."

आवश्यकतावश ही उत्खनन प्रणाली को उपयोग में लाना चाहिए। अधिक लाभदायक तब होगा जब कि सर्वप्रथम इस विधि से उत्खनन करके यह पता लगा ले कि यहाँ पर कोई अवशेष है या नहीं। यदि वहाँ पर कोई अवशेष है तब समय, धन अपव्यय और स्थान का ध्यान रखते हुए आवश्यकतानुसार अन्य प्रणालियों से उत्खनन किया जाय।

क्षेत्र उत्खनन (Area-Excavation)–किसी क्षेत्र में उत्खनन से पूर्व निम्न बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

1—उत्खनन का क्षेत्र कम से कम इतना अधिक विस्तृत हो जिससे लेख और नियन्त्रण में सहूलियत हो।

2—क्षेत्र इस ढंग का होना चाहिये जिसे आवश्यकतानुसार जिस दिशा में चाहे, बिना डेटम रेखा को तोड़े, विस्तार कर सके।

3—स्तरों का विधिवत परीक्षण कर, क्रमानुसार उनका नम्बर नोट कर ले।

4—क्षेत्र को इतना अधिक खोल दे, जिससे वहाँ पर प्रकाश पर्याप्त मात्रा में पहुँच सके। अत्यन्त गहराई में यह प्रकाश स्तरों तथा उपलब्ध पदार्थों की परख करने में पूर्ण सहायता प्रदान करता है।

5—यदि वहाँ पर किसी प्राचीन नगर के अवशेष मिलें तो उनका (प्राचीन) स्थान ढूँढ़ने के लिए समकोण उत्खनन ही आवश्यक हो जाता है अर्थात् इसी विधि से ही उत्खनन किया जाना चाहिये क्योंकि इसमें उपर्युक्त सभी विशेषतायें उपलब्ध होती हैं।

समकोण उत्खनन—अधिक काल तक निवसित रहे स्थानों पर समकोण क्षेत्र बनाकर उत्खनन कार्य किया जाता है। हड़प्पा और मोहें-जो-दड़ो का टीला इसका उदाहरण है। इसके लिए उत्खनन क्षेत्र को कई बराबर भागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक समकोण में स्वतन्त्र रूप से उत्खनन कार्य किया जाता है। आवश्यकतानुसार इन समकोण क्षेत्रों को जिस दिशा में चाहे बढ़ाया जा सकता है पर डेटम रेखा को अपने पूर्व रूप में ही रखना चाहिए। समकोण को लम्बाई चौड़ाई, जितनी गहराई तक उत्खनन कार्य करना है, उसी के अनुसार रखनी चाहिए। एक समकोण से दूसरे समकोण के बीच में मिट्टी ढोने वाले श्रमिकों के लिये तीन फीट चौड़ा मार्ग छोड़ दिया जाता है। यदि एक समकोण में उत्खनन करते समय कोई दीवाल के (या अन्य कोई अवशेष) अवशेष दूसरे समकोण की ओर जाते हुए दिखाई पड़ें तो बीच की मिट्टी को काटकर मिलाया जा सकता है। प्राचीन नगर के अवशेषों का पता इस विधि से भली-भाँति चल जाता है। यह लेख प्रमाण और नियन्त्रण के लिए सर्वोत्तम विधि है। प्रकाश के पूर्ण मात्रा में पहुँचने के कारण अत्यन्त गहराई तक भी स्तरों तथा उपलब्ध हुए विभिन्न पदार्थों की परख की जा सकती है। वस्तुओं के प्राप्ति-स्थान को यथाक्रम नापने के लिये समकोण क्षेत्र के चारों ओर $1\frac{1}{2}$ फीट की दूरी पर लकड़ी के खूँटे गाड़ दिये जाते हैं। उसके ऊपर हथौड़े से कील ठोंक कर सुतली की डोरी बाँध दी जाती है। यह डेटम रेखा कहलाती है। उत्खाता को उत्खनन क्षेत्र को किसी भी दिशा में बढ़ाने पर इस रेखा का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। डेटम रेखा से प्राप्त वस्तु की नाप लम्बाई × चौड़ाई-गहराई के रूप में ली जाती है। लकड़ी के खूँटे $1\frac{1}{2}$ इञ्च समकोण में तथा 1 फुट 3 इंच लम्बे होते हैं। कील (खूँटी) 2 इञ्च लम्बी होती है। प्रत्येक समकोण क्षेत्र का नामकरण कर दिया जाता है यथा अ 1, अ 2, अ 3, ब 1, ब 2, ब 3 आदि। सर जान मार्शल ने सन् 1944-45 में तक्षशिला के भीड़ टीले का उत्खनन इसी विधि से किया था। उन्होंने उत्खनन क्षेत्र 6 × 6 भागों में विभाजित कर उत्खनन कार्य किया था। समकोण क्षेत्र के निकट नियन्त्रण गर्त (Control-pit) का होना भी आवश्यक है। यह निर्देशक (Supervisor) के स्वयं अधिकार में रहता है। यह लगभग $2\frac{1}{2}$ फीट समकोण का क्षेत्र होता है। यहाँ पर उत्खनन कार्य निर्देशक स्वयं या उसकी संरक्षता में कोई योग्य पुरुष सतह से $1\frac{1}{2}$ से 2 फीट की गहराई तक करता है। इससे उसे समकोण में उत्खनन का पूरा ज्ञान रहता है और उसे यह मालूम हो जाता है कि कौन-सा स्तर आगे आने वाला है। डा० ह्वीलर ने लिखा है—

"It is a glimpse into the future of his stratigraphical work. Without it, neither the supervisor nor his diggers, working blindly from the top, can avoid the confusion of the lower part of one stratum with the upper part of the next below it......control-pits must be sufficiently numerous to minimise risks arising from the unevenness or interruption of strata, and sufficiently small in area to restrict the confusion of evidence which is inherent in their exploratory nature. The control pit is indeed a means of concentrating errors which

---

नोट—यदि 20 फीट की गहराई तक उत्खनन कार्य करना है तो समकोण क्षेत्र 20 फुट साइड (20 Feet sides) बनाकर उत्खनन करना चाहिए। इसी प्रकार से 30 फुट समकोण क्षेत्र का उत्खनन 30 फीट की गहराई तक किया जा सकता है। 10 फुट समकोण क्षेत्रों के बीच में 2 फुट का मार्ग पर्याप्त होगा।

would otherwise be spread over the whole area. Its evidence in detail must be used with proportionate circumspection." (Dr. Mortimer Wheeler : Arch. from the earth, P. 84—85).

नियंत्रण गर्त में उत्खनन कार्य सबसे पहिले खड़े बल से किया जाता है तत्पश्चात् क्षितिजाकार में। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इस विधि के उत्खनन में निर्देशक के कृत्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है; साथ ही लेखन, चित्रकला, स्तरों की परख, उपलब्ध प्रमाणों के समाजोकरण में भी पर्याप्त सुलभता रहती है। अतः यह विधि पुरातत्व विज्ञान के लिए एक वरदान के रूप में सिद्ध हुई है।

(तक्षशिला के भीड़ टीले से लिया गया समकोण क्षेत्र उत्खनन का चित्र)

चित्र 18—समकोण क्षेत्र उत्खनन

ग्रिड और खंडित ग्रिड प्रणाली द्वारा उत्खनन—समय और धन की बचत के लिए इन प्रणालियों को उपयोग में लाया जाता है। ग्रिड उत्खनन प्रणाली की अपेक्षा खंडित ग्रिड प्रणाली से अधिक शीघ्रता से काम निकाला जा सकता है। ग्रिड प्रणाली के अन्तर्गत डेटमरेखा से एक से डेढ़ ($1—1\frac{1}{2}$) फीट के अन्दर समकोण में केवल उत्तर और पूर्व की खाईं खोदी जाती है। एक खाईं से दूसरी खाईं के बीच 3 फिट का स्थान छोड़ दिया जाता है। वैसे इसका उपयोग मिट्टी ढोने के लिए किया जाता है पर आवश्यकतानुसार इसे मिला भी दिया जाता है। खंडित ग्रिड प्रणाली में प्रत्येक खायीं को दो बराबर भागों में बाँट दिया जाता है और उनके बीच तीन फिट का स्थान छोड़ दिया जाता है। अधिकांशतः इन विधियों का उपयोग विस्तृत उजाड़ खंड में ही किया जाता है। पृथ्वी के गर्भ में दबे हुए अवशेषों के पता लगाने में ये विधियाँ अधिक लाभदायक नहीं सिद्ध होतीं। केवल इनसे ऊपरी अवशेषों का ही पता लगाया जा सकता है।

चित्र 19—ग्रिड प्रणाली द्वारा उत्खनन खंडित ग्रिड प्रणाली द्वारा उत्खनन

बिन्दुकोण (Point System) **उत्खनन**— इस प्रणाली के अन्तर्गत समकोण क्षेत्र के उत्तरी दाहिने किनारे पर कोई 4 फिट लम्बे और इतने ही चौड़े क्षेत्र में उत्खनन कार्य किया जाता है। विस्तृत उजाड़ खंडीय भूभागों पर ही इस विधि को उपयोग में लाया जाता है।

समानान्तर क्षेत्र प्रणाली (Parallel Trenches or Substantive Trenches)—नगर के गढ़, दीवार और नगर के राजकीय केन्द्र के बीच सम्बन्ध जानने के लिए इस विधि से उत्खनन कार्य किया जाना चाहिये। जैसे, उत्खनन करते समय यदि रक्षात्मक दीवाल के अवशेष मिल गये तो वहाँ से नगर के गढ़ या राजकीय केन्द्र के बीच सम्बन्ध जानने के लिए समानान्तर परिसर या सब्सटेन्टिव ट्रेंच के द्वारा उत्खनन कार्य करना चाहिये। इसकी लम्बाई चौड़ाई से कहीं अधिक होती है। इसके दोनों ओर तीन-तीन फिट की दूरी पर खूँटे गाड़ दिये जाते हैं और उन पर सुतली की डोरी बाँध दी जाती है जो डेटमरेखा का कार्य करती है। इस डेटमरेखा से $1\frac{1}{2}$ फिट हटकर उत्खनन कार्य आरम्भ होता है। पहले खड़े बल से उत्खनन कार्य किया जाता है।

परिखा क्षेत्र में गहराई और प्राप्त वस्तु का निश्चित स्थान संकेत करने के लिए बाईं ओर से निकट वाले खूंटे से

पहिले लम्बाई, फिर परिखा क्षेत्र के भीतर की चौड़ाई और अन्त में डेटम रेखा से गहराई नापी जाती है। लम्बाई और चौड़ाई नापने के लिए ऐंगिल मेजर का प्रयोग किया जाता है जिसके दोनों ओर बबुल लेवेल (Bubble Level) लगा रहता है जिसमें पारे का बीच में रहना यह संकेत करता है कि बबुल लेवेल किसी ओर झुका नहीं है। गहराई नापने के लिए गुनियाँ, लकड़ी का रूल तथा फीता का प्रयोग कर सकते हैं।

उत्खनन कार्य सर्व प्रथम पहली और तीसरी खाईं में शुरू किया जाता है जिससे उत्खनन में सहूलियत रहे। पहले की खोदी हुई मिट्टी दूसरे में तथा तीसरी की चौथे में जमा कर देते हैं। जब इन दोनों का उत्खनन समाप्त हो जाता है तो उन दोनों की (2,4) मिट्टियों को उत्खनन किये हुए गढ़े में (1,3 में) उलट दिया जाता है। इस प्रकार से उत्खनन कार्य बड़ी सहूलियत से हो जाता है। तक्षशिला के सिरकप (Third City of Taxila—सन् 1944-45 में) तथा पंजाब में हड़प्पा नामक स्थान पर इसी विधि से उत्खनन कार्य किया गया था।

लेखन विधि—

नं०	परिमाण	स्तर	पदार्थ	निरूपण
1	IV 6" × 3'—5'6"	(3) भूरी मिट्टी	लोहे का चाकू 5" लम्बा ब्लेड	चित्र अंकित
2	III 1'4" × 2'5"—7'2	(4) हल्की लाल मिट्टी, कहीं पर राख अवशेष	एक मूँगे का दाना	लकड़ी की राख के साथ मिला

प्रत्येक खूटों पर दोनों ओर काले रंग से नम्बर डाल दिये जाते हैं—रोमन नम्बर I, II, III। इससे रिकार्ड के परिमाप में सहूलियत हो जाती है।

समानान्तर उत्खनन क्षेत्र
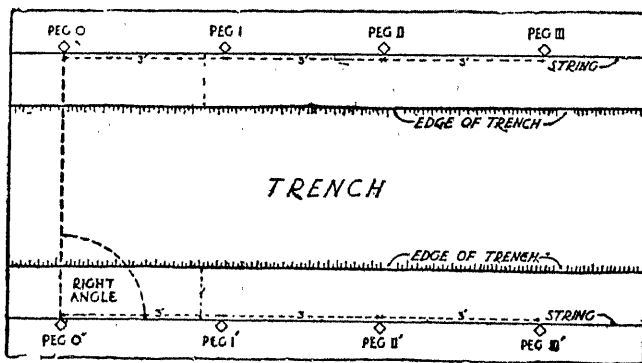
चित्र 20—Layout of a trench for three-dimensional recording.

क्षितिजाकार और खड़े बल से उत्खनन (Horizontal and Vertical digging) **तथा उससे लाभ एवं हानि** (Advantages and disadvantages)—

क्षितिजाकार उत्खनन से किसी स्थान की सांस्कृतिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। इसका अत्युत्तम उदाहरण तक्षशिला का सिरकप नामक स्थान है जहाँ पर सर जॉन मार्शल ने क्षितिजाकार में उत्खनन करके (सन् 1944-45 में), वहाँ पर निवसित पार्थियन युग की सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण किया था। डा० ह्वीलर ने लिखा है।

"By horizontal excavation is meant the uncovering of the whole or a large part of a specific phase in the occupation of an ancient site in order to reveal fully its layout and function."

इस विधि का उपयोग अधिक लाभदायक तब सिद्ध होता है जब उदग्र (खड़े बल) विधि के साहचर्य में उत्खनन कार्य किया जाता है। अतः सर्व प्रथम किसी स्थान पर खड़े बल से उत्खनन करके पता लगा लेना चाहिए कि यह स्थान कितना प्राचीन है, किस सभ्यता के लोग यहाँ पर आकर निवास करते रहे, कैसे उनका उत्कर्ष और अपकर्ष हुआ। इस उत्खनन पद्धति का क्षेत्र सीमित होने के कारण, उस स्थान का पूर्ण इतिहास बताने में असमर्थ रहती है। अतः पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये खड़े बल के साथ-साथ क्षितिजाकार में उत्खनन करना भी अनिवार्य हो जाता है। इस आधार पर ये दोनों एक दूसरे के पहलू हैं जो किसी भी स्थान के पूर्ण इतिहास को रचाने में समर्थ हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं। इनकी दशा जल-मीन सदृश है। ह्वीलर का कथन इस विषय में पर्याप्त है—"Vertical digging first, horizontal digging afterwards.'

ह्वीलर ने पुनः दोनों के साहचर्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"The two procedures are of course complementary, not antagonistic, and the excavator may be expected to attempt if rarely to achieve, both methods of approach.

उदग्र विधि का उपयोग मोहें-जो-दड़ों में किया गया था। क्षितिजाकार उत्खनन से सिल्चेस्टर, ग्लासटोनवरी, पंजाब और तक्षशिला आदि की सांस्कृतिक स्थितियों का पता लगाया गया था। ह्वीलर का कथन है कि किसी भी स्थान का क्षितिजाकार रूप में उत्खनन करने से पहले स्तर विन्यास का विधिवत अध्ययन एवं अभ्यास कर लेना चाहिये अन्यथा वह सभ्यता का निर्धारण सही ढङ्ग से नहीं कर सकता है। पिट रिवर्स ने भी इसी विधि का आश्रय लेकर विभिन्न स्थानों की खुदाई कराई थी। इस उत्खनन से सबसे महत्वपूर्ण लाभ यही है कि किसी भी स्थान की प्राचीनतर सभ्यता का पूर्णतया दिग्दर्शन होता है। यह सभ्यता तिथि निर्धारण में भी सहायक सिद्ध होती है। ह्वीलर ने लिखा है—

"It is needless to say, it must not be inferred that the Horizontal excavation is necessarily summary and unscientific ideally. Careful horizontal digging can alone, in the long

---

समानान्तर क्षेत्र में त्रिकोण माप—

(1) लम्बाई का परिमाप (Longitudinal measurement) (2) चौड़ाई का परिमाप (Outward measurement) (3) गहराई का परिमाप (Downward measurement)

Note—Substantive trenches—In the category is included the cross-trenching of a line of fortifications, to establish their structural sequence and to link it up with the sequence of occupations within the enclosu-e. (Wheeler, Arch, from the earth, p. 86).

run give us the full information that we ideally want." वह पुन: कहते हैं : "That all horizontal digging must proceed from further clear and comprehensive vertical sections the question of priority is fundamentally not in doubt."

अत: इन दोनों का साहचर्य लाभ तथा असाहचर्य हानि सर्व विदित है। बड़े-बड़े नगरों का उत्खनन कार्य सर्व प्रथम उदग्र (खड़े बल) से ही किया जाता है। डा० ह्वीलर ने खड़े बल की उत्खनन पद्धति पर संकेत करते हुए लिखा है :—

"By vertical excavation is meant the excavation of a restricted area in depth with a view to ascertaining the succession of cultures or of phases and so producing a time scale or culture scale for the site."

प्राचीन नगरों के अवशेष ढूँढ़ने तथा एक स्थान से दूसरे स्थान का सम्बन्ध जानने के लिए इस विधि से उत्खनन करना आवश्यक है और आवश्यकतानुसार इसे प्रत्येक दिशा में आगे भी बढ़ाया जा सकता है। इस उत्खनन विधि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डा० ह्वीलर ने लिखा है—

"Vertical digging well, by itself, serves a valuable purpose in establishing geographical distribution of a culture and its time relationship with other cultures from place to place, but this evidence still derives its ultimate significance from a knowledge of the social environment of the cultures concerned."

ह्वीलर ने उदग्र उत्खनन को "It is the railway time table without a train" कहा है। इस विधि से किसी भी युग की सभ्यता का निर्धारण नहीं किया जा सकता है, केवल उस युग की ऐतिहासिक तिथि ही निर्धारित की जा सकती है। ह्वीलर ने क्षितिजाकार उत्खनन को 'They were trains without a time table." कहा है। इस विधि से किसी भी युग की सम्पूर्ण सभ्यता का पता चल जाता है पर इतिहास (ऐतिहासिक तिथि) नहीं। हानि यह है कि दोनों विधियों को संयुक्त रूप में उपयोग न करने से किसी भी स्थान का सम्पूर्ण इतिहास नहीं रचाया जा सकता है। अत: उपयोगिता साहचर्य में है, पृथकत्व में नहीं। ये विधियाँ अधिकांशत: प्राचीन नगरों के सम्पूर्ण अवशेष को प्रकाश में लाने के लिये अपनाई गई हैं। इनसे कहीं पर ज्यादा और कहीं पर कम सफलता मिली है। आधुनिक युग में तो खड़े बल के उत्खनन से ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक वस्तुओं के अवशेष ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया गया है। ह्वीलर ने लिखा है कि "There is no right way of digging but there are many wrong ways." ह्वीलर का यह विचार लेखक की दृष्टि में सत्य भी है।

अध्याय | 18

अनुकरण विधि

उत्खाता के लिए यह आवश्यक है कि वह उत्खनन क्षेत्र में मिले हुए सभी पदार्थों का विधिवत अनुकरण कर ले। कुछ पदार्थ ऐसी भग्न अवस्था में मिलते हैं कि उनको उठाते ही टूट जाने का डर रहता है अतः ऐसी अवस्था में पहले उनका अनुकरण कर लेना चाहिये। अनुकरण कई एक विधियों से किया जा सकता है पर मुख्य विधियाँ निम्न हैं—

1—साँचा बनाकर (Moulding)

2—पेंसिल से खींचकर (Drawing)

3—हाथ से अनुकरण कर (Copying)

4—कागज के कुचले का लेप बनाकर (Paper squeezes)

5—लेख की मोहर बनाकर (Estampage)

साँचा बनाकर सिक्कों आदि का अनुकरण किया जा सकता है। इसके लिये पहले साँचा बना लेना चाहिये और उसी में पेरिस प्लास्तर को डाल देना चाहिये। इस प्रकार से सिक्के का पूर्ण अनुकरण हो जाता है। बड़ी-बड़ी मूर्तियों का अनुकरण भी इसी विधि से किया जा सकता है।

कागज के गीले कुचले का लेप प्रस्तरादि जैसे पदार्थों के उभड़े हुए स्थानों का अनुकरण करने के लिये किया जाता है। सूखे लेप का प्रयोग अत्यन्त कोमल या रंगीन चित्रों के अनुकरण के लिये किया जाता है। लेप बनाने की सर्वोत्तम विधि यह है कि पहले कागज के छोटे-छोटे टुकड़े कर उसको किसी पानी के बर्तन में डाल देना चाहिये। जब वे खूब गल जायँ तो उनको निकाल कर खूब महीन महीन बाँट कर पतला बना लेना चाहिये और उसी को उपयोग में लाना चाहिये।

जिन पदार्थों का चित्र आलोक चित्रकला आदि से स्पष्ट रूप में नहीं लिया जा सकता है, जैसे प्रस्तर आदि पर खुदे हुये लेख का, तो उनकी मुहर बना कर अनुकरण कर लेना चाहिये। इसके बनाने की विधि यह है कि उत्कीर्ण लेखों पर पहले स्याही फेर देना चाहिये तत्पश्चात् उसी पर एक मोटा कागज चिपका देना चाहिये। इस प्रकार से पूरे लेख का अनुकरण उस कागज पर हो जाता है।

—o—

अध्याय | 19

वैदिक संस्कृति और हड़प्पा सभ्यता में समानता व विभिन्नता

सिन्धु सभ्यता का परिज्ञान एवं प्रकाश पुरातत्व की एक महत्वपूर्ण देन है। हड़प्पा सभ्यता वैदिक संस्कृति से प्राचीन है, यह विद्वानों का मत है। हड़प्पा मोहें-जो-दड़ो के सदृश्य नगरों के अवशेष कालीबंगान और लोथल आदि स्थानों में भी प्राप्त हुये हैं। हड़प्पा के लोग कौन थे, किस जाति के थे, कहाँ से आये इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।

कुछ विद्वानों का मत है कि हड़प्पा के लोग आर्य थे जो यहाँ पर आकर निवास करने लगे। दूसरा मत है कि यह अनार्य थे तथा आर्यों से पहले यहाँ रहा करते थे। लिखित सामग्री के अभाव में कुछ भी कहना कठिन है।

वैदिक साहित्य का सृजन आर्यों द्वारा हुआ जिससे हमको वैदिक संस्कृति, तथा आर्यों व अनार्यों के शारीरिक गठन का ज्ञान होता है। वैदिक साहित्य में कुछ ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिससे आर्यों के शारीरिक गठन की विशेषताएँ ज्ञात हो जाती हैं। उनका माथा चौड़ा, नाक ऊँची निकली हुई ठुड्ढी, आँखें बड़ी, गौर वर्ण तथा हृष्ट-पुष्ट तथा लम्बे होते थे। अनार्यों को अनासः विशेषण दिया है वह काले वर्ण के होते थे तथा उनकी नाक चिपटी होती थी।

हड़प्पा सभ्यता में लिखित सामग्री के अभाव के कारण विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन से कुछ अस्थि अवशेष प्राप्त हुए हैं। जिसके आधार पर शारीरिक गठन का अनुमान लगा सकते हैं। अस्थियों के अध्ययन से यह विदित होता है कि यह चार जाति के थे—

1—प्रोटो आस्ट्रेलायड

2—भूमध्य सागरीय

3—मंगोलियन

4—अल्पाइन

प्रोटो आस्ट्रेलायड जाति के तीन सिर प्राप्त हुए हैं। विद्वानों का अनुमान है कि यह सिर उस नगर के मूल निवासियों के हैं। यह अस्थि अवशेष मोहें-जो-दड़ो में प्राप्त हुए हैं। भूमध्य-सागरीय ढाँचे अधिक प्राप्त हुए हैं। मंगोलियन अस्थि अवशेष केवल एक प्राप्त हुआ है। पिगट महोदय के अनुसार मंगोलियन जाति सिंधु प्रदेश की मूल निवासिनी जाति न थी। वास्तव में केवल अल्पाइन किस्म के अस्थि अवशेष मिले हैं, वे ही आर्यों के शारीरिक गठन पर कुछ प्रकाश डालते हैं। मेसोपोटामियाँ में भी इसी प्रकार के कुछ अस्थि अवशेष मिले हैं। तृतीय शताब्दी ई० पू० में ही भारत में जातियों का सम्मिश्रण होना प्रारम्भ हो गया था।

वैदिक सभ्यता व हड़प्पा सभ्यता में कुछ विभिन्नताएँ तथा कुछ समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। हड़प्पा सभ्यता का समय तीन सहस्राब्दी ई० पू० माना गया है। जो भी संस्कृति हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन होने पर प्राप्त हुई है उसे हम नागरिक सभ्यता कह सकते हैं। हड़प्पा सभ्यता को देखने से ज्ञात होता है कि हड़प्पा सभ्यता एक पूर्ण विकसित नागरिक सभ्यता थी। सभ्यता की पुरातत्व सम्बन्धी परिभाषा निम्न है "जो संस्कृति नागरिकता को प्राप्त कर लेती है, जहाँ के लोगों को लिखना पढ़ना ज्ञात हो, सवाल हल करना जानते हों, उन्हें सभ्यता इसके अतिरिक्त संस्कृति कहेंगे।" हड़प्पा में नगर थे तथा नागरिकता को प्राप्त कर लेने के कारण इसे हड़प्पा सभ्यता कहते हैं। संक्षेप में हड़प्पा सभ्यता एक नागरिक संस्कृति थी।

वैदिक संस्कृति नागरिक संस्कृति नहीं थी; वह एक ग्रामीण संस्कृति थी । उन्होंने नागरिक जीवन को प्राप्त नहीं किया था अतः संस्कृति के उच्चतम शिखर पर पहुँचने पर भी सभ्यता कह कर सम्बोधित नहीं किया जा सकता। अधिकतर विद्वानों का मत है कि वैदिक सभ्यता नागरिक सभ्यता न होकर पूर्णतया ग्रामीण सभ्यता थी । वैदिक साहित्य में ग्राम पदाधिकारी का वर्णन मिलता है । अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन दोनों सभ्यताओं के वस्तु विषय का वर्णन करने से दोनों में प्रर्याप्त रूप से विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। "मार्शल'' का कथन है कि "आर्य सभ्यता अभी पशु-पालन दशा में हो थी और हड़प्पा व मोहें-जो-दड़ो के नागरिक जीवन से नितान्त अनभिज्ञ थी।"

हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन में ताम्र व अन्य धातुओं को उपलब्धि होती है साथ-साथ पत्थर की बनीं हुई छूरियाँ तथा अन्य उपकरण उपलब्ध होते हैं, अतः स्पष्ट है कि हड़प्पा सभ्यता संस्कृति के विकास की उस सीढ़ी पर स्थित है जहाँ ताम्र व प्रस्तर दोनों ही दैनिक कार्यों में प्रयुक्त होते थे। पत्थर का प्रयोग अधिकतर किया जाता था। वैदिक साहित्य में पत्थर का उल्लेख नहीं मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि पाश्चात्य कालोन वेदों में लोहे का भी उल्लेख मिलता है। इसके विपरीत हड़प्पा में कहीं भी लोहे के अवशेष नहीं प्राप्त हुए हैं। अतः स्पष्ट है कि वे लोहे के प्रयोग से पूर्णतया अनभिज्ञ थे। वैदिक कालोन लोग लोहे से परिचित थे तथा उसका उपयोग भी करते थे। सम्भवतः पत्थर के ज्ञान से वे अपरिचित थे। ताम्र व पत्थर का प्रयोग हड़प्पा में होता था अतः इसे ताम्र युग भी कहते हैं। विद्वानों का मत है कि हड़प्पा में चाँदी का प्रयोग अधिक होता था। सोने का प्रचलन कम था। वैदिक साहित्य में चाँदी से अधिक सोने का प्रयोग मिलता है।

धार्मिक रीति रिवाजों में कुछ समानता होते हुए भी भिन्नता प्रतीत होती है। हड़प्पा के निवासी बहुदेवोपासक थे। वैदिक आर्य विविधता में एकता देखते थे। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" एक ही ईश्वर है, उसको भिन्न-भिन्न लोग विभिन्न नामों से स्मरण करते हैं। हड़प्पा में उत्खनन से मातृ देवी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। विद्वानों का मत है कि हड़प्पावासियों की अधिष्ठात्री देवी मातृ देवी थी। देवताओं में प्रमुख स्थान इसी को प्राप्त है। इसके विपरीत आर्यों के साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनके सभी देवता पुरुष देवता थे यथा इन्द्र, वरुण और अग्नि आदि।

हड़प्पा सभ्यता के लोग लिंगपूजक थे यह विभिन्न आकार प्रकार के सैकड़ों लिंगों के उपलब्ध होने से स्पष्ट है। आर्य साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि आर्य लोग लिंग की पूजा ही नहीं करते थे प्रत्युत लिंग-पूजकों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे लिंग-पूजकों को शिश्न देवा कहते थे। वे प्रार्थना करते थे कि उन्हें उनके यज्ञों में आने से रोके और उन्हें हानि पहुँचाये। यह तथ्य काफी महत्वपूर्ण है तथा इसका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि आर्य साहित्य में इन शिश्न देवों का उल्लेख राक्षसों के साथ किया गया है। सिंधु सभ्यता में लिंग-पूजा प्रणाली के प्रचुर प्रमाण मिले हैं।

आर्य अग्नि पूजक थे। वैदिक काल में यज्ञों का प्राबल्य था। अग्नि कूप बने थे जिनमें हविष को अग्नि में प्रज्वलित करते थे। अग्नि कुंडों का वैदिक संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान था। हड़प्पा आदि के उत्खनन में अग्नि कूप का

केदारनाथ शास्त्री ने लिखा है—

"In ancient India No, 3, Dr. Wheeler identifies the author of "Cemetery H at Harappa with the Vedic Aryans and arrives at the conclusion that it were these latter people who sometime in or about 1500 B. C, barbarously destroyed the Indus Civilization. But I have conclusively shown (on the strength of his own findings) that the cemetery H people could not be the Vedic Arayns."

कोई भी निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। कालीबंगान की खुदाई में विद्वानों ने कुछ अग्निकुंड होने का अनुमान लगाया है पर अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। हड़प्पा व मोहेंजोदड़ों में कहीं भी हवन कुंड के अवशेष नहीं मिले हैं।

वेदों में प्रधानतः निर्गुणोपासना है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पूर्व वैदिक काल में मूर्ति पूजा का प्रचलन नहीं था। आर्य मूर्ति पूजक नहीं थे परन्तु हड़प्पा सभ्यता में मूर्ति पूजा का प्रमाण पद-पद पर प्राप्त होता है। सिंधु प्रदेश के निवासी निश्चित रूप से मूर्तिपूजक थे। हड़प्पा सभ्यता की खुदाई में हमको अनेक मिट्टी व पत्थर की मूर्तियाँ मिली हैं जिन्हें विद्वानों ने धार्मिक मूर्तियाँ घोषित किया है।

ऋग्वैदिक काल में शिव पूजा का प्रचलन नहीं था। सिंधु प्रदेश में यह अति लोक प्रिय थे।

इसी प्रकार हड़प्पा सभ्यता की मुद्राओं व मृन्मूर्त्तियों के अध्ययन से आभासित होता है कि हड़प्पा सभ्यता वाले बैलों या साँड़ों को विशेष आदर की दृष्टि से देखते थे। सम्भवतः वे उनके धर्म से सम्बन्धित थे। बैलों का अत्यधिक महत्व था। इसके विपरीत आर्यों के साहित्य से उनकी गाय के प्रति स्पष्ट श्रद्धा झलकती है। सिंधु सभ्यता में गाय की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

अस्त्र-शस्त्र के विषय में हड़प्पा और वैदिक सभ्यता के लोग धनुष का प्रयोग करते थे। युद्ध के अवसर पर आर्य ढाल, कवच, शिरस्त्राण का प्रयोग करते थे परन्तु सिंधु निवासी इनके प्रयोग से अपरिचित थे। वैदिक साहित्य में कवच का उल्लेख है, हड़प्पा में ऐसे अवशेष प्राप्त नहीं होते हैं।

पशु के सम्बन्ध में वैदिक काल में अश्व का अत्यधिक महत्व था। अश्व सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। वैदिक राजा अश्व सेना रखते थे। वैदिक साहित्य में कुछ ऐसे यज्ञ हैं जिनमें अश्व की आवश्यकता पड़ती थी, जैसे अश्वमेध यज्ञ। अभी तक हड़प्पा की खुदाई में हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में घोड़े का होना नहीं ज्ञात हुआ है। सिंधु निवासी अश्व से अपरिचित थे। ऊपरी सतह में कुछ एक आध घोड़े के अस्थि अवशेष प्राप्त हुए हैं। विद्वानों का मत है कि वे हड़प्पा सभ्यता से बाहर के हैं। बाहरी व्यापारियों द्वारा लाये गये हैं। विद्वान उन्हें हड़प्पा सभ्यता का नहीं मानते हैं। गैंडा, बैल, हाथी आदि इनकी मुद्राओं पर अंकित हैं परन्तु कहीं भी अश्व का चित्र अंकित नहीं है। हड़प्पा सभ्यता में हरित आदि की अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं।

खान-पान की दृष्टि से दोनों में बहुत अधिक अन्तर तो नहीं रहा होगा पर एक बात में अन्तर दृष्टिगत होता है। वैदिक लोग माँस का भक्षण करते थे, सम्भवतः मछली का प्रयोग कम करते होंगे। हड़प्पा व मोहेनजोदड़ों में मछलियों के बहुत से ढाँचे उपलब्ध हुए हैं। सम्भवतः वे मछली अधिक खाने में प्रयोग करते होंगे। मछली इन लोगों का प्रिय भोजन था।

वैदिक काल में यह प्रमाण नहीं मिलता कि वह पक्की मिट्टी का प्रयोग कर भवन निर्माण करते थे। हड़प्पा में बड़े-बड़े पक्की ईंटों के बने भवनों के अवशेष खुदाई में प्राप्त हुए हैं। हड़प्पा कालीन नगर व्यवस्था सुव्यवस्थित थी। वे कच्ची ईंटों के साथ-साथ पक्की ईंटों का प्रयोग अधिक करते थे।

भाषागत भिन्नता भी दोनों सभ्यताओं में थी। जातिगत भिन्नता तथा मनुष्यों के शारीरिक गठन में वैषम्य था।

ऋग्वेदीय आर्य सभ्यता कृषि प्रधान थी तथा हड़प्पा सभ्यता व्यापार प्रधान थी।

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि यह दोनों सभ्यतायें भिन्न थीं पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

यदि हम दृष्टिपात करें तो वैदिक संस्कृति तथा हड़प्पा सभ्यता में कुछ समानता भी दृष्टिगोचर होती है।

हड़प्पा सभ्यता के उत्खनन से ज्ञात होता है कि वे लोग ताम्र कांस, पत्थर, स्वर्ण तथा रजत का प्रयोग करना जानते थे। हड़प्पा कालीन लोग रजत का प्रयोग अधिक करते थे। वैदिक कालीन लोग भी सोने, चाँदी, तांबे, कांसे का प्रयोग करते थे। दोनों ही सभ्यताओं में तांबा, कांसा, चाँदी, पीतल के आभूषण प्रयोग करते थे।

भोजन व खान पान में समानता थी। हड़प्पा की खुदाई में गेहूँ व जौ प्राप्त हुए हैं जिससे स्पष्ट होता है कि वह खाने मे गेहूँ, जौ प्रयुक्त करते थे, चावल, दूध, दाल, शाक खाते थे। ऋग्वैदिक लोग भी भोजन में गेहूँ, जौ, चावल, दूध, शाक का प्रयोग करते थे। दोनों ही सभ्यताओं में मांस का प्रचलन था।

अस्त्र प्रयोग में सिन्धु निवासी धनुष बाण का प्रयोग करते थे। दो मुद्राओं पर धनुष के द्वारा शिकार करने का दृश्य है। वैदिक साहित्य में भी धनुष बाण का उल्लेख मिलता है। आर्य धनुष बाण का प्रयोग करते थे। चाकू, छुरा, बर्छी, तलवार से दोनों ही लोग परिचित थे तथा उनका प्रयोग करते थे।

पशुओं में समानता दृष्टिगोचर होती है। खरगोश, हिरन, मोर, हंस, मुर्गी, बन्दर, उल्लू, तोता आदि पशुओं के चित्र हड़प्पा सभ्यता में मिले हैं। वैदिक संस्कृति में भी इन पशु पक्षियों को महत्व प्राप्त था।

हड़प्पा में एक मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें एक व्यक्ति योगासन में स्थित है। उसके चारों ओर बाघ, गैंडा आदि के चित्र बने हैं, त्रिनेत्र से युक्त हैं। इसे पशुपति शिव की संज्ञा दो जाती है। मार्शल ने इसे Prototype of historic Siva कहा है। ऋग्वेद में रुद्र देवता का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान था जो कि शिव का ही एक रूप माना गया है। रुद्र शिव के ही रूप थे।

हड़प्पा में पुरुष लिंग तथा स्त्री लिंग मातृ शक्ति दोनों ही देवताओं की पूजा का प्रचलन था। वैदिक काल में भी साहित्य से यह सिद्ध होता है कि पुरुष देवता व देवी दोनों की ही उपासना की जाती थी।

वैदिक संस्कृति में धर्म के क्षेत्र में बलि दी जाती थी। देवताओं को पशु बलि दी जाती थी। हड़प्पा में कहीं-कहीं पशु बलि के उदाहरण भी मिलते हैं। मोहेनजोदड़ों से प्राप्त एक मुद्रा पर एक बकरा बना है। उसी के पीछे एक व्यक्ति चौड़े फल वाला हथियार लिये खड़ा है। सम्भव है कि पशु बलि देव पूजा का अंग समझा जाता है। सिन्धु प्रदेश की देवी को संतुष्ट करने के लिए दी जाने वाली पशुबलि में ही हिन्दू धर्म के शक्ति सम्प्रदाय के बीज अन्तर्निहित हैं।

कृषि कर्म के साथ साथ पशुपालन भी सिन्धु निवासियों का एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था। वैदिक कालीन संस्कृति में भी मनुष्यों का मुख्य उद्यम कृषि कर्म व पशुपालन था।

हड़प्पा सभ्यता व वैदिक संस्कृति में स्त्री पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। वे भुजबन्ध कंकण नूपुर मुद्रिका हार आदि आभूषण धारण करते थे। ये विभिन्न धातुओं के होते थे।

सिन्धु सभ्यता के अन्तर्गत भी समाज की इकाई परम्परागत परिवार ही था तथा वैदिक साहित्य में भी।

अध्याय | 20

उत्खनन सूत्र और स्तर-विन्यास

खुदाई करते समय मुख्य रूप से हम दो बातों को अवश्य ध्यान में रखते हैं। प्रथम विभिन्न स्तर की परख, द्वितीय उनका किसी प्राचीन अवशेष से सम्बन्ध। उत्खनन से प्राप्त वस्तुएं, उनके उस काल की निर्माण-कला के कारण, एवं उपलब्ध अन्य साधनों द्वारा दूसरे स्तर के साथ सम्बन्ध पर ही निर्धारित की जा सकती हैं। अत: यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर की तिथि वहीं से मिली वस्तुओं के आधार पर ही निश्चित की जा सकती है। ऐसा अक्सर पाया जाता है कि स्तर सीधे नहीं होते, अत: किसी वस्तु के प्राप्त स्थान की गहराई इस बात का प्रतीक नहीं होती कि, इतनी गहराई में उस युग की सभ्यता रही होगी। एक स्थान पर उसी सभ्यता के अवशेष कम गहराई पर होते हैं एक दूसरी जगह पर उससे ज्यादा। वैसे आम तौर पर यह सत्य है कि वस्तु जितने नीचे होगी उतनी ही पुरानी होगी। इसी का आधार मानकर खुदाई के क्षेत्रों में परतों को बाँटा जाता है। यही परतें खुदाई में प्राप्त भिन्नताओं को जो किसी भी संयोग द्वारा घटित हुई थीं, संकेत करती हैं। यह भिन्नता मिट्टी की ठोसता, ढीलापन अथवा रंग के द्वारा पहचानी जा सकती है। यही कारण है कि खुदाई में नये स्तर मिलते जाते हैं। उदाहरण के तौर पर चूल्हे से प्राप्त राख एक स्तर काल का संकेत करेगी। वहीं दूसरे स्तर का ज्ञान ईंटें कराती हैं। यही कारण है कि परत या स्तर एवं अधिवास युग को एक नहीं माना जा सकता है। जिस प्रकार आग का संकेत हमें राख से प्राप्त होता है उसी तरह काई इस बात का प्रतीक है कि वहाँ पानी रहा होगा। दीवार में गिरी एवं धंसी हुई मिट्टी चोरी को इंगित करती है, क्योंकि इस मिट्टी में न तो ठोसपन होगा और न ही उसका रंग बदला होगा। उत्खनन कार्य में एक अन्य महत्वपूर्ण बात होती है कि जब तक एक स्तर की खुदाई हम समाप्त न कर लें एवं प्राप्त वस्तुओं को विवरण सहित अलग न रख लें तब तक दूसरे स्तर की खुदाई में हमें हाथ नहीं लगाना चाहिये। उत्खनन करते समय प्राप्त किसी वस्तु के विषय में यदि जरा भी हृदय में शंका हो तो उसे ऊपर की परत में रखना चाहिये क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि वह बाद की है, अथवा पहले की है। उदाहरण के तौर पर ब्रिटिश युग के सिक्के या अशोक चक्र के सिक्के आज भी चलते हैं पर उन्हें आज के युग में नहीं रखा जा सकता है। खुदाई करते समय विभाग के लिए उत्खनन की कुछ परतें छोड़ देना चाहिए जिससे उपलब्ध सम्पूर्ण स्तरों का चित्रण हो सके। उत्खनन क्षेत्र की दीवारों के गिरने के डर के कारण ऊपर से नीचे की ओर उत्खनन क्षेत्र क्रमश: कम हो जायेगा।

(1) **स्थल और विभिन्न युग :**—उत्खनन करने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह स्तर-विन्यास को अवश्य ध्यान में रखे। उदाहरणार्थ सिन्धु घाटी के युग की मुहर, ब्रिटिश युग का सिक्का एवं अशोक के समय का सिक्का यदि एक ही तल पर मिलते हैं, यदि हम इनको प्राप्ति स्थान के आधार पर देखें और हम इनका युग निर्धारित करें तो यह एक ही युग में आयेंगे। पर वास्तव में इनमें एक दूसरे के युग में बहुत दूरी है। इस प्रकार हजारों वर्ष का इतिहास एक ही स्थान पर एकत्रित हो गया है। सिर्फ स्तर विन्यास के आधार पर ही प्राप्त तीनों वस्तुएँ अपने-अपने युग का अलग-अलग संकेत करती हैं। सिन्धु घाटी के युग की मोहर जो दीवार के नजदीक मिली, दीवार मकान का संकेत करती है। दीवार गिरने पर वहाँ गढ़ा हो गया। एवं अगले युग में उससे थोड़ा हटकर अन्य मकान बना जिसकी ईंट भी पिछले युग की ईंटों से भिन्न थी। इस मकान के गिर जाने के बाद यहाँ कोई अन्य मकान नहीं बना, यहाँ अशोक युग का सिक्का मिला। इससे आगे ब्रिटिश युग में किसी का सिक्का वहाँ गिर गया, धीरे-धीरे समय बीतता गया वहाँ जमीन पर घास, पेड़ आदि उग

आये और एक टीला सा बन गया। जब खुदाई करने वालों ने वहाँ टीले को देखा और उसकी खुदाई करवाई गयी तो एक ही स्तर पर वहाँ उपरोक्त तीनों सिक्के जो विभिन्न काल के थे पाये गये। अतः हम देखते हैं कि एक स्थान पर कई युगों की चीजें भी मिल सकती हैं। एवं इनको केवल स्तर विन्यास के आधार पर ही अलग किया जा सकता है।

(2) परत और उनका निर्माण :—खुदाई का यह आम सिद्धान्त है कि जो वस्तुएँ जितनी गहराई से प्राप्त होंगी वह उतनी पुरानी होंगीं। उदाहरण के तौर पर मकान बनाने से पहले मकान की नीव खोदी जाती है, एवं उसी पर धीरे-धीरे मकान उठाया जाता है। इसी आधार को लेकर प्रायः उत्खनन करने वाले उसकी प्राचीनता का निर्धारण कर देते हैं। प्रसिद्ध विद्वान पीट्री ने मिस्र में हुई खुदाई को गहराई के आधार पर युगों में बाँटा है। अत नगरों के रहने वालों का इतिहास लिखना तभी सम्भव होगा जब उन सभी आवश्यक बातों पर ध्यान दिया जाये जो खुदाई करते समय स्तर अथवा परत के रंग तथा उतार चढ़ाव से ही प्रतीत होंगी। निचली परत दीवार से पहले के समय का संकेत करेगी एवं दीवार के साथ की परत उसकी समकालीनता का एवं ऊपरी परत उसके अंत का संकेत करती है। पहली एवं अन्तिम परत के बीच में उस युग की सभ्यता का चित्रण होगा। यहाँ पर प्राप्त वस्तुएँ इस युग की सभ्यता की ओर संकेत करेंगी। अवशेषों से प्राप्त वस्तुओं की तिथि निर्धारण का कार्य सबसे पहले मिस्र एवं मेसोपोटामिया में किया गया। पर यह स्तर विन्यास के विपरीत है। कभी-कभी कोई नगर पूरे तौर पर नष्ट हो जाते हैं, उनकी जगह नये मकान बनते हैं, नगर बसते हैं, वहाँ मनुष्य अपनी जरूरत की सारी वस्तुएँ इकट्ठा करता है और उनका प्रयोग करता है, उन्हें फेंक देता है। जो मिट्टी में दब जाते हैं। पुराने घर गिरते हैं, नये बनते हैं, फर्श भी मरम्मत कराई जाती हैं। नये मकान प्रायः पुराने अवशेषों पर ही बनते हैं क्योंकि यह जरूरी नहीं होता कि पुरानी नीव फिर से खोद कर नया मकान बनवाया जाये। कभी-कभी यदि कोई दैवी प्रकोप हो जाता है और मकानों को क्षति पहुँचती है तो उनकी मरम्मत या नया निर्माण कराना पड़ता है। उसमें रहने वाला अपनी रुचि के अनुसार उसमें रद्दोबदल करता रहता है। जिन चीजों को वह प्रयोग में लाता है खुदाई के समय खुदाई करने वालों को वह खुदाई में प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त दुरुपयोग करने के कारण जमीन की सतह ऊँची या नीची भी हो जाती है। कच्ची सड़क पर गाड़ियों के चलने के कारण खाँचे पड़ जाते हैं इससे नीचे की मिट्टी ऊँपर आ जाती है। इस प्रकार मनुष्य के विभिन्न क्रिया-कलापों से जमीन ऊँची नीची हो जाती है। इस प्रकार का अध्ययन ही वहाँ के मनुष्यों के रहन-सहन का प्रतीक है तथा स्थान यह भी बता देता है कि निवासी कैसे थे, उनका रहन सहन कैसा था। प्राप्त वस्तुएँ एवं अवशेष इस बात की ओर संकेत करते हैं कि नगर कैसे थे। एवं उनका आरम्भ किस युग से किस जाति विशेष के मनुष्यों द्वारा हुआ। कितने समय तक वह सभ्यता विकसित रही एव कब उसका पतन हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही गृह की बातों से तमाम चीजों का ज्ञान होता है। जो मकान सुन्दर, विशाल थे सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों ने उसका स्वरूप बदल दिया। फर्श ने कच्ची मिट्टी का रूप धारण कर लिया। बैठने उठने के स्थान पर चूल्हे जलने लगे। वहाँ पर प्राप्त वस्तुएँ उस मकान के गिरने का विवरण देती हैं।

यदि हम ध्यान से देखें तो खुदाई से प्राप्त वस्तुयें खुदाई कराने वालों के लिये उतनी महत्वपूर्ण नहीं होतीं क्योंकि वह उस स्थान का इतिहास जानना चाहता है, वहाँ के निवासियों के बारे में जानकारी चाहता है, जिसके लिए प्राप्त वस्तुयें एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। और उसे उनका सहारा लेना पड़ता है। खुदाई कार्य करने पर दबी हुई सभ्यता नष्ट होती है एवं उससे प्राप्त वस्तुओं के आधार पर हमें उस सभ्यता के बारे में जानकारी मिलती है।

(3) स्तर अध्ययन :—उत्खनन करने वाले व्यक्ति के लिए मुख्य उद्देश्य होता है, स्तर को पहचानना एवं उनमें आपस में एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करना, जिससे उत्खनन करने वाले उस आधार पर इतिहास लिख सकें। इतिहास लिखने के लिए उसे स्तर की मिट्टी का रंग एवं उसमें प्राप्त पदार्थों को बड़ी ही सावधानी से देखना चाहिये तथा उसी पर आधारित होकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिये। कभी-कभी कुछ कारण वश जैसे धूप इत्यादि लगने के कारण

इनकी भिन्नता ढूँढ़ना बड़ा ही कठिन हो जाता है, ऐसी हालत में स्तर को चाकू की सहायता से छीलना चाहिये, तथा उस पर पानी के छींटे देना चाहिये। मिट्टी ठोस एवं सूखी होने पर पानी को जल्द सोख लेगी एवं नमी होने पर तरी रहेगी। इन सब चीजों को बड़े ही धैर्यपूर्वक देखना चाहिये। स्तर की गहराई अथवा मात्र उसकी रेखा ही होना उस युग की पैमाइश करता है। अलग-अलग प्रकाश एवं समय में स्तरों के अध्ययन से लाभ होता है। पुरातत्ववेत्ता का उद्देश्य मात्र समझना ही नहीं होता वरन वह उसके आधार पर इतिहास भी लिखता है। स्तर-विन्यास के लिये कोई निश्चित नियम नहीं है, क्योंकि भूगर्भ स्तर क्रम से बनते हैं। बर्फ का पिघलना एवं वहाँ मनुष्य का निवास करना एक नियमित क्रम से होता है। यही कारण है कि पुरुष द्वारा निर्धारित स्तरों का कोई क्रम नहीं होता है। क्योंकि कभी-कभी ऊपर और नीचे की पर्तें इस तरह मिल जाती हैं कि वे एक ही समय की निर्मित प्रतीत होती हैं। जिस स्थान पर दो निवास युग गुजर जाते हैं वहाँ की मिट्टी की जाँच बड़ी सावधानी से करना चाहिये। एक युग के खत्म हो जाने पर दूसरे के अधिकार के नीचे उस स्थान पर जरूर कोई न कोई प्रमाण मिलेंगे, जैसे हड्डी के टुकड़े, तीर, राख इत्यादि। उदाहरणार्थ 'डोरसेट'' नामक जगह में चार, पाँच इंच गहरो भूरी पर्तं ने प्रारम्भिक कांस्य युग के बाद एक हजार वर्ष तक की उस अनिवसित अवस्था का संकेत किया।

किसी भी स्थान पर उत्खनन करते समय बीते हुए दो कालों के बीच की दूरी का संकेत प्राप्त वस्तुओं के अतिरिक्त हवा द्वारा लाई गयी मिट्टी, रेत तथा क्रमिक सारिणी बनाकर भी किया जा सकता है। यह प्रयोग सर मार्टीमर व्हीलर ने ब्रह्मगिरी के उत्खनन में किया था। परतों के आधार पर प्राप्त हर फीकरे को अलग रख कर क्रम वार उसका अध्ययन किया गया था। और इसी के आधार पर ब्रह्मगिरी में निवसित 3 सांस्कृतिक युगों का पता लगा था। उत्खनन में सबसे नीचे पाषाण कालीन वस्तुएँ मिली थीं एवं सबसे आधुनिक आन्ध्रकालीन युग में स्थानीय शव स्थान के अवशेष थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि तीनों सभ्यताएँ क्रमवार विकसित हुईं। तीनों के अवशेषों में भिन्नता थी। पाषाण युग के फीकरे हाथ के थे, मध्य कालीन फीकरे वाले व भूरे चमकदार थे एवं आधुनिक मिट्टी के बर्तन चाक पर बनें थे व पालिशदार थे। सभी एक दूसरे से मिलते थे जो स्वाभाविक है क्योंकि आने वाले प्रचलित प्रणाली को धीरे-धीरे परिवर्तित करते थे। अत: पुरानी सभ्यता धीरे-धीरे लोप हुई।

कुछ परतें एक दूसरे के समकालीन होती हैं एवं कुछ पहले वाले के थोड़ा व कुछ ज्यादा बाद की हैं। इन्हीं पर्तों के आधार पर ही इतिहास लिखा जाता है अत: इसको पहचानने में बड़ी ही सावधानी करनी चाहिए एवं धैर्य से काम लेना चाहिए। दीवारें एवं उनके साथ की पर्तों का रहस्य धैर्यपूर्वक ही जाना जा सकता है। पुरानी प्रथा के अनुसार दीवारों पर का चित्रण उत्खनन करने वाले का ध्येय होता था व दीवार के पर्तं उसका इतिहास होते थे।

(४) **स्तर लेखन :**—उत्खनन वृतांत को समझने के लिए उसका चित्रण एवं उसका लेखन भी परम आवश्यक है। उत्खनन के समय परतों की डेटम रेखा से नीचे गहराई नाप ली जाती है एवं उस पर नम्बर भी डाल दिया जाता है। पहले स्तर में उत्खनन के समय जो चीज मिलती है उसे अलग रख देते हैं, उसके बाद जैसे-जैसे नए स्तरों की खुदाई होती जाती है प्राप्त वस्तुएँ नम्बर से अलग रखी जाती हैं। उत्खनन क्षेत्र में दीवार के प्रत्येक स्तर में नम्बर लगा दिया जाता है। यहाँ गहराई के आधार पर स्तर नहीं ज्ञात कर सकते हैं। मिश्र में पीट्री ने प्रत्येक युग की सभ्यता को २० इंच के स्तर में रखा है। यह क्रम अवैज्ञानिक है क्योंकि इससे न तो समुद्र सतह से किसी उत्खनन स्थान पर गहराई नापी जा सकती है और न स्तर ही क्रमवार किए जा सकते हैं। जैसे-जैसे स्तर मिलते हैं डेटम-रेखा से गहराई नाप कर नम्बर लगा देते हैं। उत्खनन क्षेत्र में दीवार पर प्रत्येक स्तर पर ऊपर से नीचे नम्बर लगे होते हैं। जिससे वह वहाँ प्राप्त चीजों का संकेत करता है। इनसे तैथिक क्रम भी निर्धारित होता है। दो स्तरों का एक में मिलना उतना कठिन नहीं होता जितना कि एक स्तर को दो भागों में बांट कर उसमें मिले पदार्थों को अलग करना होता है। स्तरों का नम्बर

ऊपर से नीचे तथा निवसित युगों का नम्बर नीचे से ऊपर होता है। एक युग में अनेक स्तर होते हैं। उपर से नीचे के स्तरों का क्रम 1,2,3,4 इत्यादि नम्बरों से घेर O में रख कर एवं निवसित युगों को नीचे से ऊपर क्रमशः I, II, III, से अंकित करते हैं। उत्खनन करने वाले को चाहिए कि वह तब तक खुदाई करे जब तक नीव की मिट्टी न मिल जाए जिससे प्रथम युग का पता चल सके। कार्य यदि बीच में बन्द हो जाता है तो निवसित युग निर्धारण एवं उसका स्तरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना कठिन हो जाता है।

उत्खनन कार्य को समाप्त करने से पहले वहाँ के स्तरों का ग्राफ बना लेते हैं। इसके लिए संकेत चिन्हों का ज्ञान परम आवश्यक है। उत्खनन क्षेत्र, उसमें मिले स्तर व अवशेष ग्राफ पर चित्रित करना आवश्यक है। 1 फुट क्षेत्र को ग्राफ पर 1/2 इंच में रखते हैं। ऊपर डेटम रेखा से पर्तों की गहराई नापी जाती है। अतः रेखा को संकेत करने वाली डोरी रोज देखनी चाहिए उसमें ढीला पन न आने पाए। लम्बाई गहराई नापने के लिए लम्बे फीते प्रयोग में लाते हैं। यदि ऊपर से 10 से 12 तक गहराई की पर्तें है तो ग्राफ पेपर पर इसी क्रम से रखा जाएगा। ठोस मिट्टी होने पर उसका संकेत ग्राफ पेपर पर बना देगें। डा० गैरहर्डबग्रू ने स्तर चित्रण के लिए दूसरी प्रणाली अपनाई है। इसमें विभिन्न स्तरों को हल्के, गहरे, भारी रंगों से चित्रण करते हैं। इसमें नम्बर तथा संकेत नहीं होते। इस प्रणाली से उत्खनन का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता।

स्तर विन्यास उत्खनन में विशेष महत्व रखता है। कभी-कभी एक ही स्थल पर दो समय के व्यक्तियों के निवास का प्रमाण मिलता है क्योंकि जरूरी नहीं होता कि नयी नीव पर नया निर्माण हो, उसी को मरम्मत करा कर कार्य चलता रहता है। अतः गहराई के आधार पर सभ्यता के युगों का निर्धारण गलत है। उत्खनन करने वाले व्यक्ति का उद्देश्य मात्र उत्खनन ही नहीं होता है, वह वहाँ के रहने वालों का इतिहास भी जानना चाहता है। इसे केवल वहाँ के स्तरों का अध्ययन करके ही जाना जा सकता है। उत्खनन से प्राचीन स्थान एवं प्रमाण नष्ट भी होते हैं। अतः उन प्रमाणों की सुरक्षा परम आवश्यक है। स्तर, अध्ययन, चित्रण इत्यादि उत्खनन करने वाले व्यक्ति के कार्य के अंग हैं। उसकी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि उसे पढ़ कर पाठक उस स्थान का पूर्ण इतिहास जान ले।

अध्याय | 21

विज्ञान का पुरातत्व में योगदान

बेरियम (Ba)

बेरियम प्रकृति में केवल संयुक्त अवस्था में पाया जाता है। इसके दो मुख्य खनिज बेराइटीज तथा विदेराइट हैं। यह गलित बेरियम क्लोराइड के विद्युत अपघटन से तैयार किया जाता है। बेरियम पारे के कैथोड पर एकत्र होता है और इसके साथ बेरियम अमलगम बनाता है। अमलगम के निर्वात-आसवन से पारा आसुत के रूप में अलग हो जाता है और बेरियम शेष रह जाता है।

गुण—यह गुणों में कैल्शियम, स्ट्राशियम से मिलता जुलता है। यह चाँदी जैसे सफेद रंग की धातु है। काफी अघातवर्ध्य (Malleable) नरम तथा हल्की है। यह वायु में जलने से आक्साइड और नाइट्रोजन में जलने पर नाइट्राइड तथा जल से हाइड्रोजन बनाता है।

उपयोग—यह कागज और रबड़ के निर्माण में आता है। जिंक सल्फाइट के साथ सफेद वर्णक के रूप में प्रयुक्त होता है। हाइड्रोजन पर आक्साइड बनाने के लिये प्रयुक्त होती है। अम्लों के साथ अनुरूप लवण बनाती है।

कैल्शियम सल्फेट ($CuSO_4$)

कैल्शियम सल्फेट, एनाहाइड्राइड तथा जिप्सम के रूप में पाया जाता है। कम ताप पर जल में विलेयता अधिक है। जिप्सम को 120°c तक गर्म करने से 'पेरिस प्लास्टर' बनता है तथा थोड़ा जल मिलाने से कठोर हो जाता है और फैलता है। कठोर होने की क्रिया के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है।

उपयोग—पेरिस प्लास्टर साँचे और नमूने के काम आता है। ब्लैक बोर्ड पर लिखने के चाक बनते हैं। हड्डी आदि टूट जाने पर डाक्टर लोग उसके इर्द गिर्द पेरिस का प्लास्टर लगाते हैं।

जिप्सम सीमेंट और पेरिस प्लास्टर के निर्माण में आता है। खेत में कैल्सियम की मात्रा बढ़ाने के लिये तथा फिल्टर पत्र सिंचित करने के भी काम आता है।

कार्बन डाई आक्साइड (CO_2)

इतिहास—इस गैस का ज्ञान प्राचीन काल से है। ब्लैक (Black, 1775) ने प्रदर्शित किया कि यह कार्बोनेटों की रचक है, इसलिये उसने इसे स्थिर वायु (Fixed air) नाम दिया। इस बात को कि यह कार्बन का एक आक्साइड है, लेवाँशिये ने प्रमाणित किया।

उपस्थिति—आयतन में वायु का ·03% भाग कार्बन डाई आक्साइड का है। यह कन्दराओं, खानों, शुष्क कुओं तथा ज्वालामुखियों, मनुष्य, पशु पक्षियों के अस्थि पञ्जरों (Skeletons) में भरी पड़ी है।

बनाने की विधियाँ—(i) कार्बोनेट या भारी धातुओं के गर्म करने से जैसे Ca 1 co→cao + Co2

(ii) कार्बोनेटों या बाई कार्बोनेटों पर अम्ल की क्रिया से।

(iii) जैसे संगमरमर पर तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की अभिक्रिया द्वारा बनाई जाती है। इसका निर्माण फ्लू गैसों से, चूने के पत्थर से तथा किण्वन द्वारा होता है।

गुण—रंगहीन, मन्द गन्ध तथा हल्के स्वाद वाली गैस है, चूने के पानी को दूधिया करना, जलती वस्तुओं को बुझा देना यह इसकी एक प्रवृति है। क्षारों को उदासीन कर, दो प्रकार के लवण = कार्बोनेट तथा बाई कार्बोनेट बनाती है। पौधे प्रकाश-सश्लेषण की क्रिया में क्लोरोफिल द्वारा सूर्य के प्रकाश में भोजन बनाते हैं।

उपयोग—आग बुझाने के काम आती है। इसी उद्देश्य से अग्नि शामक यन्त्र बना है जो कैसी भी अग्नि हो, बुझा देता है। सोडा वाटर तथा मीठा सोडा बनाने के काम में आती है। शुष्क वर्फ प्रशीतन तथा लाहौरी फोड़े (Local Sore) के इलाज के लिये प्रयुक्त होता है।

(Agmo3) सिल्वर नाइट्रेट (Lunar Caustic)

यह सिल्वर नाइट्रेट चाँदी को तनु नाइट्रिक अम्ल में घोलने से प्राप्त हुए विलियन के क्रिस्टलन से बनाया जाता है। इसको त्वचा या कपड़े पर लगाने से काले धब्बे पड़ जाते हैं। इसके अवचयन से चाँदी का महीन चूर्ण मिलता है जो काले रंग का तथा धब्बे पड़ने का कारण होता है। इसी गुण के कारण यह दाहक के रूप में प्रयुक्त होती है।

ऐसी चाँदी जिसमें थोड़ा ताँबा मिला हो, नाइट्रिक अम्ल में घोलने से ताँबा, चाँदी घुलकर नाइट्रेट बनाते हैं इसे हाइड्रोक्लोरिक में डालने से अवहेपित होने पर छान कर सुखा लेते हैं। इस प्रकार शुद्ध सिल्वर नाइट्रेट प्राप्त करते हैं।

उपयोग—(1) यह कपड़ों पर चिह्न लगाने वालों पर खिजाब करने में प्रयुक्त होता है।

(ii) आँखों के कुकरे, त्वचा की अवांछित वृद्धि व जलाने के लिये दाहक के रूप में, फोटोग्राफी में सिल्वर हैलोजन बनाने के लिये प्रयुक्त करते हैं।

(iii) दर्पण बनाने में, प्रयोगशाला में अभिक्रमों के तौर पर प्रयोग की जाती है।

अम्ल (Acids)

हाइड्रोजन के ऐसे यौगिक जो जलीय विलयन में हाइड्रोजन आयनों के अतिरिक्त और कोई धनायन नहीं देते, अम्ल कहलाते हैं।

गुण—यह अधात्विक मूलक होते हैं। स्वाद में खट्टे, नीलें लिटमस को लाल, क्षारों को उदासीन कर लवण बनाते हैं।

बनाने की विधियाँ (i) अधात्विक आक्साइडों पर जल की क्रिया से जैसे, कार्बन डाई आक्साइड जल में घुलने से कार्बोनिक अम्ल बनता है।

(ii) लवणों के अपघटन में—जैसे सुहागे का हाइड्रोक्लोरिक के अपघटन द्वारा बोरिक अम्ल बनता है।

(iii) संश्लेषण द्वारा—आज कल हाइड्रोक्लोरिक इसी प्रकार बनता है।

(iv) अधात्विक धातुओं द्वारा गैसें प्रयोगशाला में इसी विधि द्वारा अम्लों को बनाती हैं।

नाइट्रिक अम्ल (Hno3)

परिचय— कीमियागार इसको तीव्र जल कहते हैं। ग्लॉबर ने इसे शोरे पर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से बनाया। आकाश में बिजली चमकने पर नाइट्रिक अम्ल बनता है और वर्षा जल के साथ पृथ्वी पर आ जाता है।

बनाने की विधियाँ—नाइट्रिक अम्ल बनाने के लिये सोडियम नाइट्रट या पोटेशियम नाइट्रेट को साँद्रित सल्फ्यूरिक अम्ल से क्रिया कराकर नाइट्रिक अम्ल की वाष्प जल से ठंडी कर लेते हैं।

(ii) **शोरे से**—महायुद्ध से पूर्व सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ शोरे के आसवन द्वारा नाइट्रिक अम्ल का निर्माण होता था।

गुण—शुद्व अवस्था में रंगहीन, अपघटन से अनेक गैसें बनती हैं। त्वचा पर लगने से पीड़ादायक घाव बन जाते हैं। यह प्रबल अम्ल है। सुगमता से अपघटित होकर नवजात आक्सीजन देता है। यह बहुत से यौगिकों को आक्सीकृत कर देता है। यह धातुओं से क्रिया कर उन्हें अपचित कर देता है।

(i) **उपयोग उर्वरक**—वेसिक कैल्सियम नाइट्रेट, चूने के पत्थर पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से बनता है। यह एक महत्वपूर्ण उर्वरक है।

(ii) **विस्फोट**—जैसे टी० एन० टी०, डाइनेमाइट, धूम हीन बारूद।

(iii) **इत्र, रंग और औषधियाँ**—कोल तार से प्राप्त योगिकों से इनका निर्माण होता है।

(iv) **कृत्रिम रेशम**—यह नाइट्रो सेलुलोष है।

इसके अतिरिक्त सोने चाँदी के शोधन के काम में, प्रयोगशाला में अभिक्रमक रूप में और उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त होता है।

नाइट्रोजन

इतिहास—नाइट्रोजन का आविष्कार स्काटलैण्ड के प्रसिद्ध रसायनज्ञ रदरफोर्ड ने 1772 में किया। उसने एक बन्द बर्तन में छोटे जानवरों के साँस लेने के उत्पादकों में से कार्बनडाई आक्साइड को दूर करके इस गैस को प्राप्त किया। दूसरे वैज्ञानिकों ने जिन्होंने इसकी खोज में भाग लिया प्रीस्टले, कैवेन्डिश, शीले शातलिये थे। इन्होंने नाइट्रोज का तत्व होना पाया और इसका नाम एजोट (Azote जिसमें जीवित नहीं रहा जा सकता) रखा। इसका वर्तमान नाम 'नाइटर' (नाइट्रोजन के प्रसिद्ध यौगिक से लिया गया है।

उपस्थिति--भार की दृष्टि से वायु का तीन चौथाई भाग और आयतन की दृष्टि से 19% नाइट्रोजन है। यह वानस्पतिक और जान्तव प्रोटीनों का एक अनिवार्य अंग है। उपजाऊ भूमि में यह अमोनियम लवण और नायट्रेटों के रूप में उपस्थित है।

बनाने की विधियाँ--वायु में उपस्थित आक्सीजन को दूर करके प्राप्त किया जा सकता है, इसकी विभिन्न विधियाँ हैं। जैसे--

(i) फॉस्फोरस के जलाने पर।

(ii) ताँबे की रक्त तप्त जाली पर प्रवाहित करने से।

(iii) द्रव वायु के प्रभावी वाष्पन द्वारा।

(iv) अमोनियम के आक्सीकरण से।

भौतिक गुण-- (i) रंगहीन, गन्धहीन, स्वाद रहित गैस है।

(ii) वायु की अपेक्षा थोड़ी हल्की है।

(iii) जल में अल्प विलेय है।

(iv) आक्सीजन में न मिलने के कारण प्राणियों की मृत्यु हो जाती है।

रासायनिक--न जलती है न जलने में सहायक है।

(ii) मैग्नीसियम या एल्युमीनियम नाइट्रोजन में जल कर नाइट्राइड बनाते हैं।

(iii) जीने में सहायता नहीं देती, लिटमस के प्रति उदासीन है।

(iv) यह अत्यन्त निष्क्रिय गैस है, अन्य तत्वों में साथ कठिनता से संयोग होता है।

उपयोग—(i) यह वायु में आक्सीजन की क्रियाशीलता को कम कर देती है इसलिये बहन की क्रिया तीव्रता से नहीं होती।

(ii) विद्युत लैम्पों के भरने तथा कुछ व्यवसायों में निष्क्रिय वायु मण्डल उत्पन्न करने के लिये नाइट्रोजन प्रयुक्त होती है।

(iii) नाइट्रोजन की विशाल मात्रा, अमोनिया नाइट्रिक अम्ल, कैल्सियम साइनेमाइड और अन्य यौगिकों के निर्माण में प्रयुक्त होती है।

नाइट्रोजन चक्र--यह पौधों और प्राणियों के शरीर का एक अनिवार्य अंग है। वायुमण्डल में नाइट्रोजन की प्रचुर मात्रा मुक्तावस्था में उपस्थित है और प्रतिदिन कैल्सियम सायेनेमाइड, अमोनिया और नाइट्रिक अम्ल जैसे नाइट्रोजन यौगिक बनाने के काम आती है। पौधे और प्राणी इसी नाइट्रोजन को आवश्यकतानुसार ग्रहण करते हैं। नाइट्रोजन यौगिक पौधों और जन्तुओं के काम आने के बाद कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से नाइट्रोजन मुक्त करते हैं जिन्हें वायु मण्डल फिर ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार प्रकृति में नाइट्रोजन का एक चक्र चला करता है और वायु मण्डल में इस गैस की प्रतिशत मात्रा नहीं बदलती है।

नाइट्रोजन का यौगिकीकरण—यद्यपि नाइट्रोजन एक निष्क्रीय तत्व है तदपि विशेष दशाओं में बहुत से पदार्थों से मिलकर नाइट्रोजन युक्त यौगिक बनाती है। वायु मण्डल की मुक्त नाइट्रोजन से नाइट्रोजन बनाने की क्रिया नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कहलाती है।

क्षारक (Bases)

वे पदार्थ जो हाइड्रोजन मूलक रखते हैं और जो जलीय विलयन से आयनों के अतिरिक्त और कोई ऋणायन नहीं देते क्षारक कहलाते हैं। जल में विलेय क्षारकों को क्षार कहते हैं। अर्थात प्रत्येक क्षारक क्षार नहीं होता परन्तु प्रत्येक क्षार क्षारक होता है। विलेय क्षारकों का स्वाद कड़वा, इनके जलीय विलयन में चिकनापन तथा अम्लों को

उदासीन करते हैं और लाल लिटमस को नीला करते हैं। कुछ क्षार हैं, जैसे कास्टिक सोडा, कास्टिक पोटास, वेरियम हाइड्रो-आक्साइड आदि।

बनाने की विधि—धात्विक आक्साइडों (क्षारकीय आक्साइड) पर अम्लों की क्रिया से तथा कुछ सक्रिय धातुओं पर जल पर की क्रिया से।

उभय अपघन द्वारा तथा अमोनिया के जल में घोलने से बनाये जाते हैं।

मैग्नीशियम क्लोराइड

यह प्रकृति में कार्नेलाइट के रूप में समुद्र जल में पाया जाता है। प्रयोग शाला में इसे कार्बोनेट को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घोलकर तैयार कर सकते हैं। विलयन को वाष्पित करके इसके क्रिस्टल बनते हैं। यह रंगहीन क्रिएटलोय पदार्थ हैं। इसके प्रस्वेद्य क्रिएटलन जल में विलेय हैं और गर्म करने पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और जल देते हैं। निर्जल लवण बनाने के लिए शुष्क हाइड्रोक्लोरिक अम्ल गैस के प्रवाह में गर्म किया जाता है।

उपयोग—दातो के भरने के काम आने वाले सौरेल सीमेन्ट बनाने के लिए, तथा रुई ठीक करने के लिये।

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (Hcl)

यह बहुत समय से ज्ञात है। प्रीस्टिले ने इसका नाम समुद्री अम्ल तथा लेवाजिये ने म्यूरियेटिक अम्ल रखा। डेवी ने यह सिद्ध किया कि हाइड्रोजन और क्लोरीन का मिश्रण है अतः उसने हाइड्रोक्लोरिक नाम रखा।

बनाने की विधियाँ—सोडियम क्लोराइड पर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त करते हैं। नमक पर सल्फ्यूरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त करते हैं।

गुण—यह रंगहीन, गन्ध तीक्ष्ण, स्वाद में खट्टा होता है। यह नम वायु में धूम देती है और जल में बहुत विलेय है। साधारण ताप पर जल के एक आयतन में 450 आयतन इस गैस के घुल जाते हैं। वायु से भारी रंग हीन द्रव में द्रवित किया जा सकता है।

यह न जलता है और न जलने में सहायता देता है। नम अवस्था में अम्ल नीले लिटमस को लाल करता है। यह धातुओं से संयोग कर क्लोराइड देता है। यह अम्ल काफी स्थायी है तथा अत्यन्त शक्तिशाली पदार्थों द्वारा ही आक्सीकृत होता है। सिल्वर नाइट्रेट तथा लेडएसीटेट अवक्षेप सफेद बनाता है। जो क्रमशः हाइड्राक्साइड तथा जल में विलेय है और अमोनिया से क्रिया कर अमोनियम क्लोराइड के घने श्वेत धूम बनाता है।

एक्वारेजिया (AQua Regia)—सान्द्रित हाइड्रोक्लोरिक के तीन भाग और सान्द्रित नाइट्रिक अम्ल का एक के मिश्रण को एक्वारेजिया कहते हैं। यह अम्ल राज सोने, प्लेटिनम लोहा जैसी उत्कृष्ट धातुओं (Noble Metals) को घोलने के लिये प्रयुक्त होता है।

यह क्लोरीन और क्लोराइडों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। जैसे अमोनियम क्लोराइड शुष्क सेलों के काम आता है।

(ii) स्टार्च से ग्लूकोज, उत्कृष्ट धातुओं को एक्वारेजिया में घोलने के काम आता है।

(iii) इसमें जिंक सल्फाइड का बना विलयन करने व टाँका करने के पहले साफ करने में आता है।

(iv) औषधियों तथा प्रयोगशाला में अभिक्रमक के रूप में काम आता है।

फ्लोरीन टेस्ट

इसकी बाहरी कक्षा में सात इलेक्ट्रान होते हैं और ऋण विद्युत तथा एक संयोजक है। यह हल्की पीली गैस है तथा अत्यधिक तीखी गैस है। अंधेरे में हाइड्रोजन से क्रिया कर तथा ठन्डे में संयुक्त हो H_2 F_2 फ्लोराइड बनाती है। अधातुओं से क्रिया कर सीधे संयुक्त होती है। अंधेरे में शीतल अवस्था में जल क्रिया कर H_2 $F_2 + O_2 = O_3$ देती है। शक्तिशाली आक्सीकारक है अतः कार्बनिक का शीघ्रता से नाश करती है। हाइड्रोसिड के स्थायित्व पर अत्यधिक स्थायी है तथा आक्सी अम्ल का स्थायित्व नहीं बनाती है। हाइड्रोजन से मिलकर हैलोजन गैस बनाती है। फ्लोरीन हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से क्रिया कर क्लोरीन मुक्त करती है।

चित्र 21 – Layout of an area-excavation (Taxila––Bhir Mound, 1944)
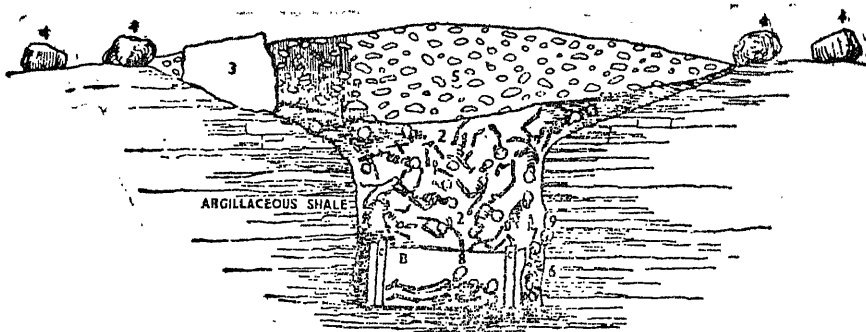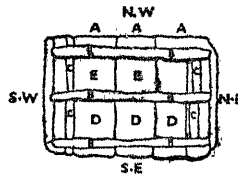
चित्र 22— Section through a megalithic grave in Hyderabad State, India,

By Meadows Taylor, 1851
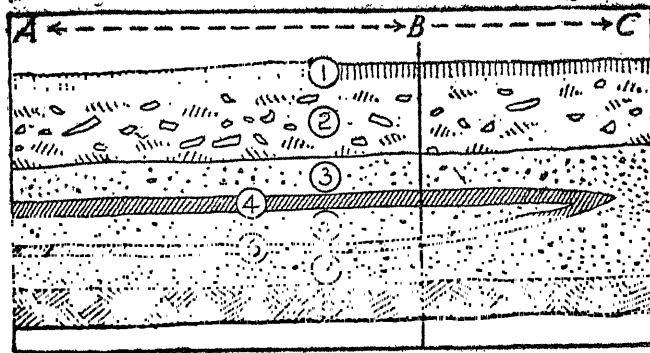
चित्र 23—Section illustrating (A-B) an apparent succession of strata (3-7), shown by an extension of the cutting (B C) to have been deposited simultaneously
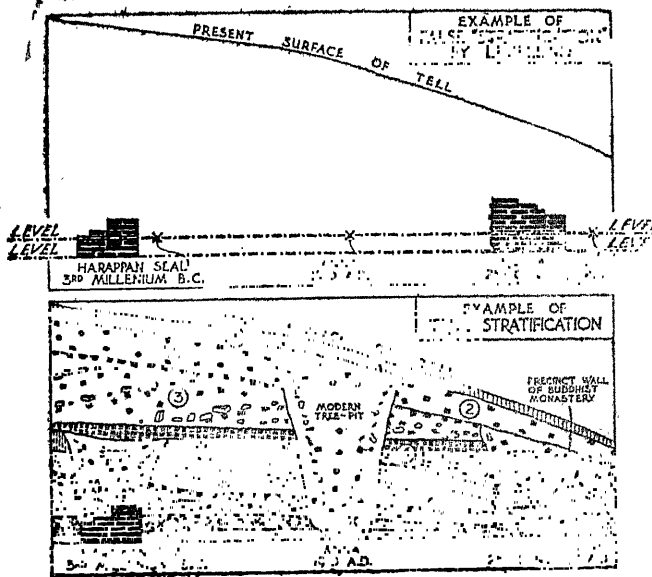
चित्र 24—Diagrams illustrating the stratification of a city-mound (below and the fallacy of recording by mechanical leval (above)
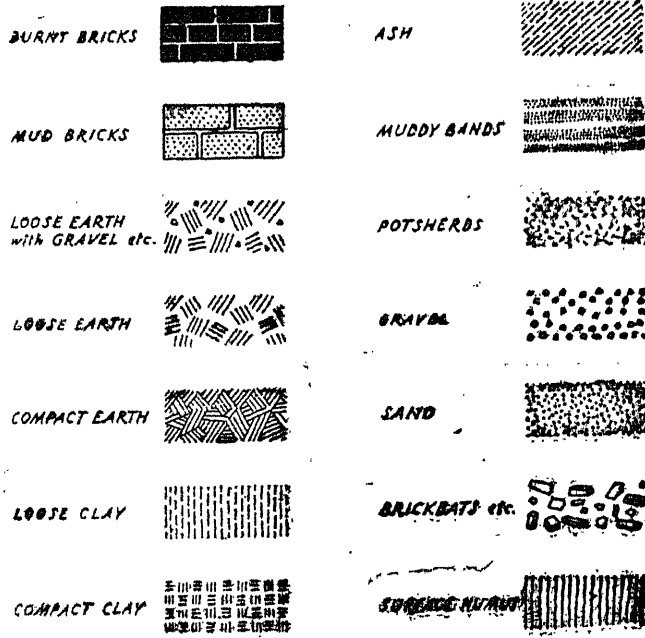
चित्र 25—Chart of symbols adopted by the Archaeological Survey of India
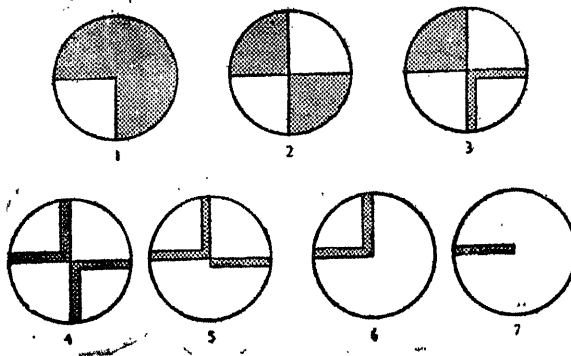
चित्र 26—The quadrant method of excavating round barrow
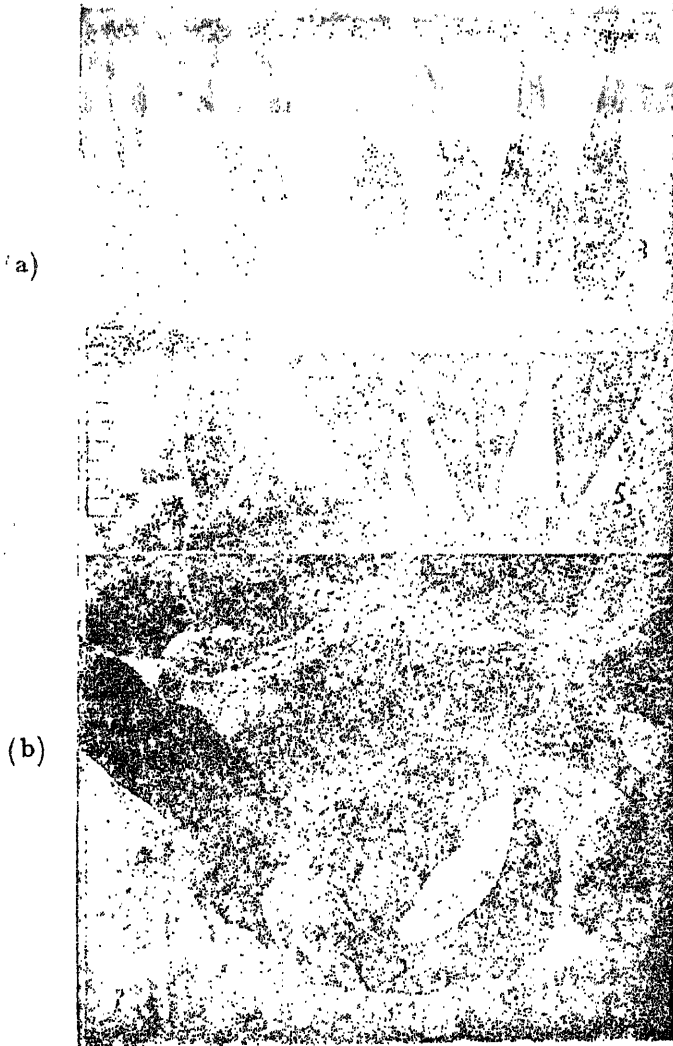
चित्र 27 — (a) Wheat'and barley from the Fayum, Egypt

(b) Basaket and silo in position
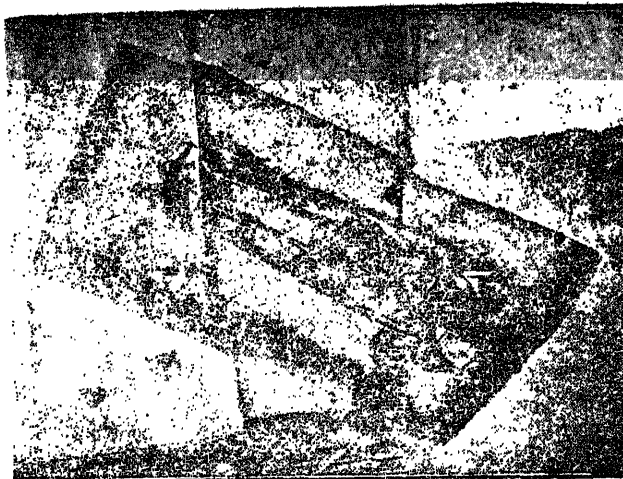
चित्र 28—(b) Burial of about 2000 B. C. at Harappa, Punjab, showing outline of wooden coffin

श्री सीताराम प्रेस, वाराणसी ।